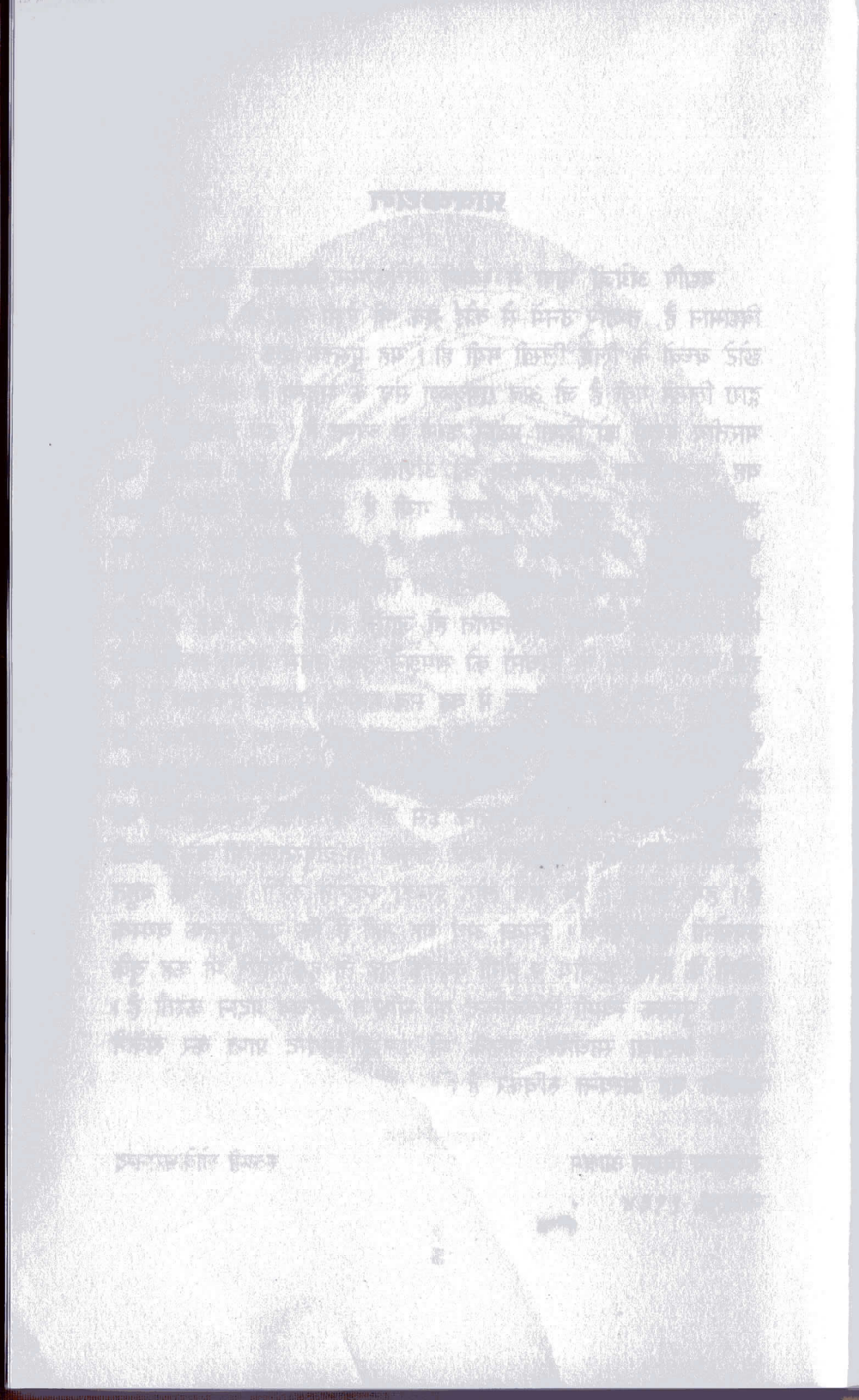

१

तरुण नरेन

एक बार एक युवक कोलकाता के रास्ते से गुज़र रहा था। अचानक, उसे जोर की चीख सुनाई दी। क्या हुआ? उसने देखा कि एक घोड़ा-गाड़ी रास्ते पर से बड़ी तेजी से भागी जा रही है। घोड़ा जितनी तेजी से हो सके उतने वेग से भागा जा रहा था। किसी चीज़ से घबड़ाकर घोड़ा इतनी तेजी से भाग रहा था। एक महिला जो इस गाड़ी पर सवार थी, वह भी बुरी तरह घबड़ाई हुई थी। वह बहुत संकट में थी क्योंकि किसी भी क्षण वह घोड़ा-गाड़ी पलट सकती थी। कोई भी उसकी सहायता के लिए आगे नहीं आ पा रहा था। उस युवक ने वस्तुस्थिति समझ ली। वह बड़ा साहसी था। जब घोड़ा उसके नज़दीक से गुज़रा, वह अपने जीवन को दाँव पर लगाकर उसकी तरफ ही लपका, और घोड़े की लगाम को पकड़कर उसे रुक जाने को बाध्य कर दिया। उस महिला के जीवन की रक्षा हो गयी तथा उसने उस नवयुवक पर अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

वह नवयुवक कौन था? उस समय उसका नाम नरेन्द्रनाथ था, पर वही बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका जन्म कोलकाता के सिमला क्षेत्र के प्रसिद्ध दत्त परिवार में हुआ था। उसके पिता श्री विश्वनाथ दत्त वकील थे। उन्होंने कई विषयों का अध्ययन किया था एवं सभी उनका समुचित सम्मान करते थे। उनकी पत्नी श्रीमती भुवनेश्वरीदेवी थीं। वे दीखने एवं व्यवहार में एक रानी के समान गरिमामयी थीं। सभी उन्हें स्नेह एवं आदर करते थे।

१२ जनवरी १८६३ को उन्होंने प्रथम पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम रखा गया - नरेन्द्रनाथ।

यदि उसके सिर पर ठण्डा पानी डालते हुए उसके कान में शिव का नाम सुनाया जाए, तो वह एकदम शान्त हो जाया करता।

नरेन बड़ा नटखट बालक था, और कभी-कभी भुवनेश्वरीदेवी उसे सम्भालने में असमर्थ हो जातीं। परन्तु उन्होंने यह देखा कि जब नरेन अत्यधिक चंचल हो जाता, तो यदि उसके सिर पर ठण्डा पानी डालते हुए उसके कान में शिव का नाम सुनाया जाए, तो वह एकदम शान्त हो जाया करता। इसलिए, अनेकों बार उसे नियन्त्रण में लाने के लिए वे इस युक्ति का इस्तेमाल किया करती थीं।

एकबार एक नाग सरकते हुए वहाँ आ पहुँचा। अन्य बालक भाग खड़े हुए, परन्तु नरेन वहीं बैठा रहा।

बालक नरेन ने अपनी माता से बहुत-सी बातें सीखी थीं, और उनकी माता उसे महाभारत तथा रामायण से अनेकों कहानियाँ सुनाया करती थीं। नरेन को राम-विषयक कहानियाँ सुनना बहुत अच्छा लगता था। उसने राम-सीता की मिट्टी की एक युगल-मूर्ति खरीदी और फूलों से उसकी पूजा करनी शुरू कर दी। एक बार वह केले के उद्यान में इस उम्मीद में बहुत समय तक बैठा रहा कि उसे हनुमानजी

के दर्शन प्राप्त होंगे क्योंकि उसने कहीं सुन रखा था कि राम के इस वीर भक्त को ऐसा स्थान अत्यन्त प्रिय है।

उसे ध्यान में मग्न होनेवाला खेल भी प्रिय था। वह अपने दो-एक संगियों को अपने साथ किसी एकान्त स्थान में ले जाता और वे लोग सीता-राम या शिव की मूर्ति के सामने बैठ जाते। तब नरेन ध्यान करने बैठ जाता और भगवान का चिन्तन करता। वह ईश्वर के ध्यान में मग्न हो जाता और उस समय अपने आसपास कुछ भी अनुभव नहीं कर पाता। एकबार एक नाग सरकते हुए वहाँ आ पहुँचा। अन्य बालक भाग खड़े हुए, परन्तु नरेन वहीं बैठा रहा। उन्होंने बहुत बार उसे पुकारा, परन्तु नरेन ने कुछ न सुना। कुछ देर बाद नाग वहाँ से चला गया। बाद में जब उसके माता-पिता ने नरेन से पूछा कि वह वहाँ से भागा क्यों नहीं, तो उसने कहा, "मैं नाग के बारे में कुछ भी जान न पाया। मैं तो आनन्द में था।"

जब कोई साधु नरेन के घर आते तो वह बड़ा प्रसन्न होता था। कभी-कभी तो वह उन्हें कीमती चीज़ें तक दे डालता था। एक बार उसने अपना पहना हुआ नया कपड़ा ही एक साधु को दे दिया। इस घटना के बाद जब भी कोई साधु उनके घर में आता, तो नरेन को एक कमरे में बन्द कर दिया जाता था। परन्तु यदि नरेन उस समय किसी साधु को देख पाता तो खिड़की से ही चीज़ें फेंक दिया करता। कभी-कभी तो वह कह उठता कि किसी दिन वह भी साधु बन जाएगा।

जैसा हमने पहले ही कहा है, नरेन के पिताजी एक वकील थे। बहुत-से लोग उनसे मिलने आया करते थे। वे उन सबका आतिथ्य करते एवं हुक्का पीने के लिए दिया करते। बैठकखाने में विभिन्न जाति के लोगों के लिए अलग-अलग हुक्कों की व्यवस्था थी। परन्तु जातिभेद नरेन के लिए एक बड़ा रहस्य था। क्यों एक जाति के सदस्य को अन्य जाति के सदस्यों के साथ भोजन करने नहीं दिया जाता? क्यों विभिन्न जातियों के लिए अलग-अलग हुक्कों की व्यवस्था की गयी थी? मुसलमानों के लिए एक अलग हुक्के की व्यवस्था थी। क्या होगा यदि वह सभी हुक्कों से धूम्रपान करे? क्या कोई धमाका होगा? या छत नीचे गिर पड़ेगी? नरेन

ने स्वयं ही इसका पता लगाने का निश्चय किया। उसने एक हुक्के से एक कश लगाया। कुछ भी तो नहीं हुआ। इस प्रकार एक के बाद एक सभी हुक्कों से कश लगाया। फिर भी कुछ नहीं हुआ। उसी वक़्त उसके पिताजी ने उस कक्ष में प्रवेश किया और पूछा कि वह क्या कर रहा है। नरेन ने उत्तर दिया, "पिताजी ! मैं देख रहा था कि यदि मैंने इस तरह जाति तोड़ी, तो आख़िर होगा क्या?" उसके पिताजी ने एक ठहाका लगाया और अपने अध्ययन कक्ष में चले गये।

२

नरेन पाठशाला और खेल में

जब नरेन छह वर्ष का हुआ तो उसका पढ़ना शुरू हुआ। पहले-पहल वह पाठशाला में नहीं गया था क्योंकि उसके पिताजी ने उसके लिए एक शिक्षक नियुक्त कर दिया था। वह शीघ्र ही पढ़ना और लिखना सीख गया। उसकी स्मरणशक्ति असाधारण थी और शिक्षक से केवल एक बार सुन लेने मात्र से ही उसे वह पाठ याद हो जाया करता था।

जब वह सात वर्ष का हुआ तो उसे मेट्रोपोलिटन संस्था में दाखिल करवाया गया। इस संस्था के संस्थापक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थे। नरेन्द्रनाथ एक अत्यन्त मेधावी छात्र था और अकस्मात् ही पाठ को याद कर लिया करता था। वह बालकों का नेता बन गया। खेल में उसकी बहुत रुचि थी। दोपहर भोजन समाप्त कर वह सबसे पहले खेल के मैदान में पहुँच जाता। कूदना, दौड़ना, मुक्केबाजी तथा काँच की गोलियों से खेलना आदि में उसकी विशेष रुचि थी। वह कुछ खेलों का आविष्कार भी कर लिया करता था।

कभी-कभी तो अपनी कक्षा को ही वह खेल का मैदान बना डालता था। शिक्षक की उपस्थिति में ही वह अन्य साथियों से बातचीत करता और उन्हें कहानियाँ भी सुनाया करता था। एक शिक्षक ने उन लोगों को बातचीत करते पकड़ लिया। उन्होंने नरेन तथा उसके

साथियों से पाठ सम्बन्धी कुछ प्रश्न पूछे। परन्तु नरेन के अलावा उसका कोई भी साथी उत्तर न दे सका। नरेन शिक्षक को भी सुन रहा था और इधर बातचीत भी कर रहा था। उसने शिक्षक द्वारा पूछे गये सभी प्रश्नों के सटीक उत्तर दे दिये। तब शिक्षक ने उनसे पूछा कि बातचीत कौन कर रहा था। सभी लड़कों ने नरेन की ओर इशारा किया। शिक्षक ने इसपर विश्वास नहीं किया और उन लोगों को खड़े हो जाने की सजा दी। नरेन भी खड़ा हो गया। शिक्षक ने कहा कि उसे खड़े होने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु नरेन फिर भी खड़ा ही रहा। उसने कहा, "मुझे खड़ा होना ही चाहिए, क्योंकि मैं ही तो बातें कर रहा था।"

नरेन का एक प्रिय खेल था "राजा और राज-दरबार" जिसमें नरेन हमेशा राजा ही बनता था। राजदरबार बरामदे और पूजाघर की सीढ़ियों पर लगता था। सबसे ऊपरवाली सीढ़ी पर नरेन का राजसिंहासन होता था। वहीं पर बैठकर वह अपने राजमन्त्रियों की नियुक्ति करता था। एक लड़के को प्रधानमन्त्री तथा अन्य एक को सेनापति बनाया जाता था। कुछ को छोटे-छोटे राजाओं का पद दिया जाता तथा अन्यों को सरकारी अधिकारियों का। तब वे अपने-अपने पदों के अनुसार नीचे की सीढ़ियों पर आसीन हो जाते। इस प्रकार राजा नरेन अपने राजदरबार का संचालन करता। राजा आदेश दिया करता, झगड़े निपटाया करता, या विरोधियों का दमन भी करता। किसी को भी राजाज्ञा का उल्लंघन करने की छूट नहीं थी। कभी-कभी वह आरोपी को कठोर दण्ड का हुक्म भी दिया करता। अपराधी भागने की भी चेष्टा करता परन्तु राजा के आदमी पूरे घर में उसका पीछा करके शोर-शराबे के साथ उसे पकड़ ही लिया करते।

नरेन को पशुओं से भी बड़ी प्रीति थी तथा वह घर की गाय से भी खेला करता। उसने कुछ पालतू जानवर और पक्षियों को भी पाल रखा था। इनमें एक-एक बन्दर, बकरी और मोर, कुछ कबूतर तथा दो या तीन गिनी-पिग थे।

कोचवान नरेन का विशेष मित्र था, और नरेन को अक्सर उससे बड़ी आत्मीयता से बातचीत करते पाया जाता। नरेन सोचता कि

परन्तु नरेन तथा उसके दो-एक मित्रों ने वहाँ रहकर उस नाविक की सहायता की।

कोचवान एक विशिष्ट व्यक्ति होता है। वह गाड़ी के सामने कैसे ठाठ से माथे पर पगड़ी पहने और हाथ में चाबुक लिये बैठता है। नरेन कहता था कि जब वह बड़ा होगा तो साईस बनेगा।

वह अनेक खेलों को आज़माता। कभी-कभी वह रसोईघरवाला खेल भी खेलता। वह सब्जियाँ ले आता तथा मसालों के साथ विभिन्न तरकारियाँ बनाता। वह सचमुच एक अच्छा रसोइया था। अन्य समय में वह कुछ बालकों को इकट्ठा करके नाटक भी किया करता। फिर

उसकी व्यायाम में रुचि हुई। पहले तो उसने अपने बरामदे में ही एक व्यायामशाला निर्मित कर ली, फिर बाद में पड़ोस की व्यायामशाला में जाया करता। उसने तलवार चलाना, लाठी-चालन, कुश्ती तथा अन्यान्य क्रीड़ाएँ भी सीखीं।

एक बार नरेन और उसके साथी एक भारी-भरकम कलाबाज़ीवाले झूले को लगाने की चेष्टा कर रहे थे। बच्चों के लिए वह एक बड़ा कठिन काम था। यद्यपि बहुत-से लोग इसे देखने के लिए वहाँ जमा हुए थे, फिर भी मदद के लिए कोई भी नहीं आ रहा था। नरेन ने उन लोगों में एक शक्तिशाली ब्रिटिश नाविक को देखा। वह उसके पास गया एवं मदद की याचना की। नाविक ने स्वीकार किया। वह उन लोगों की सहायता करने लगा, परन्तु अचानक वह झूला छूट गया एवं नाविक से टकराया। वह बेहोश होकर गिर पड़ा। बहुत-से लोगों ने सोचा कि नाविक मर गया है और उस जगह से नौ दो ग्यारह हो गये। परन्तु नरेन तथा उसके दो-एक मित्रों ने वहाँ रहकर उस नाविक की सहायता की। नरेन ने अपनी धोती फाड़कर उससे पट्टी बना ली। फिर उसके घावों पर उस पट्टी को बाँधकर उसके मुख पर पानी के छींटे दिये तथा धीरे-धीरे उसे हवा करने लगा। कुछ देर बाद नाविक को होश आ गया। नरेन तब उसे पास के एक स्कूल में ले गया जहाँ वह रह सके। फिर उसने एक डॉक्टर को बुला भेजा। एक सप्ताह बाद वह नाविक स्वस्थ हुआ और चला गया। उसके जाने के पहले नरेन ने अपने मित्रों से कुछ रुपये जमा किये एवं उस नाविक को दे दिये।

३

नरेन और उसके मित्र

नरेन और उसके मित्र कोलकाता के विभिन्न दर्शनीय स्थलों को देखने जाया करते। एक दिन नरेन और कुछ लड़के कोलकाता के

समीप, मेटियाबुरुज़ में नवाब का प्राणिसंग्रहालय देखने गये। वे लोग नाव पर गये थे। वापस आते समय उनमें से एक ने नाव पर ही कै (उल्टी) कर दी। नाविक बहुत गुस्सा हो गये। उन्होंने उन बालकों से उसे साफ करने के लिए कहा। परन्तु उन्होंने ऐसा करने से मना कर दिया और दुगुना भाड़ा ले लेने के लिए कहा। परन्तु नाविकों ने इसे न माना। नाव जब किनारे लगी तो नाविकों ने उन्हें बाहर आने न दिया। नाविक बालकों को डराने और गालियाँ बकने लगे। नरेन धीरे-से कूदकर किनारे पर आ गया। उसने दो अंग्रेज सिपाहियों को वहाँ टहलते देखा और उनसे सहायता करने के लिए कहा। वे लोग उसके साथ वहाँ पर आए और मामला समझ गये। उन्होंने नाविकों को डाँटा और बच्चों को छोड़ देने का आदेश दिया। नाविकों ने घबड़ाकर बच्चों को तत्काल छोड़ दिया।

नरेन जब लगभग ११ वर्ष का था, एक बार 'ब्रिटिश-मैन-ऑफ-वार' (एक युद्धपोत) कोलकाता के एक बन्दरगाह पर आया था। बहुत-से लोग उस जहाज को देखने के लिए गये थे तथा नरेन और उसके मित्र भी उसे देखना चाहते थे। इस हेतु एक विशिष्ट ब्रिटिश अधिकारी द्वारा एक पास लेना आवश्यक होता था। नरेन ने फॉर्म भरा एवं उस भवन की ओर गया जहाँ वह अधिकारी बैठता था। बहुत-से लोग भीतर जा रहे थे, परन्तु दरबान ने नरेन को बहुत ही छोटा समझकर उसे भीतर जाने से रोक दिया। नरेन बाहर खड़ा सोचने लगा कि अब क्या किया जाए ! उसने देखा सभी लोग पहली मँजिल के एक कमरे में जा रहे हैं। उसने सोचा कि वहाँ जाने का कोई दूसरा मार्ग अवश्य ही होगा। इसलिए वह भवन के पिछले हिस्से में गया जहाँ उसे सीढ़ियाँ दिखाई दीं। वहाँ पर कोई दरबान न था, इसलिए वह सीधे पहली मँजिल पर पहुँच गया। एक परदे को सरकाने पर उसे कुछ लोग इन्तज़ार करते दिखे। वह उस कतार में सम्मिलित हो गया और ब्रिटिश अधिकारी ने बिना प्रश्न किये अपने हस्ताक्षर कर दिये। नरेन उसी मुख्य प्रवेश द्वार से बाहर आ

देखो, तुम जानते नहीं कि उस पेड़ पर एक भूत रहता है? वह ब्रह्म-दैत्य है। यदि तुम लोग उसको इस तरह परेशान करोगे, तो वह तुम्हारी गर्दन तोड़ देगा। सावधान ! उस पेड़ पर फिर कभी मत चढ़ना।

गया। दरबान उसे देखकर आश्चर्य में पड़ गया। उसने पूछा, "तुम भीतर कैसे पहुँचे?" नरेन ने उत्तर दिया, "अच्छा, तुम्हें मालूम नहीं कि मैं एक जादूगर हूँ?"

नरेन के एक दोस्त के अहाते में एक पेड़ था। नरेन और उसके मित्र उसपर चढ़ते और उसकी डाल पर झूलते थे। नरेन पाँवों के सहारे से उसकी डाल पर उल्टा झूलता था, और आगे-पीछे झूलते हुए

अन्ततः नीचे कूद पड़ता था। एक बूढ़ा व्यक्ति वहाँ रहा करता था। वह लड़कों का इस प्रकार झूलना पसन्द न करता था क्योंकि ऐसा करना खतरनाक भी हो सकता था। एक दिन उस बूढ़े ने नरेन और उसके मित्रों से कहा, "देखो, तुम जानते नहीं कि उस पेड़ पर एक भूत रहता है? वह ब्रह्म-दैत्य है। यदि तुम लोग उसको इस तरह परेशान करोगे, तो वह तुम्हारी गर्दन तोड़ देगा। सावधान ! उस पेड़ पर फिर कभी मत चढ़ना।"

बच्चों को डराने के लिए इतना ही काफी था, परन्तु नरेन को नहीं। जैसे ही वह बूढ़ा वहाँ से चला गया नरेन पुनः उस पेड़ पर चढ़कर झूलने लगा। उसके दोस्तों ने पूछा, "नरेन! तुम कैसे यह करने का साहस कर रहे हो? तुमने सुना नहीं वह बूढ़ा अभी क्या कह गया?"

नरेन ने हँसकर उनसे कहा,"तुम लोग भी कैसे मूर्ख हो ! मैं कितनी बार इस पेड़ पर चढ़ा हूँ। यदि उस बूढ़े की बात सच होती तो मेरी गर्दन कब की टूट गयी होती।"

४
नरेन बड़ा हुआ

जैसे-जैसे नरेन बड़ा होने लगा वह खेलने के बजाय पुस्तकें पढ़ने में अधिक रुचि लेने लगा। पाठशाला में वह अच्छी तरह पढ़ाई करता था। परन्तु उसके पिताजी दो वर्षों के लिए उसे कोलकाता से बाहर ले गये जिससे उसका पाठशाला जाना छूट गया। जब वह लौट कर आया तो उसे तीन वर्ष का पाठ्यक्रम एक वर्ष में ही पूरा करना पड़ा।.जब परीक्षा का समय निकट आने लगा उसने अथक परिश्रम करना शुरू कर दिया और प्रवेशिका परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली। उस वर्ष उसकी पाठशाला से वह

एकमात्र छात्र प्रथम श्रेणी में आया था। उसके पश्चात् एक वर्ष के लिए वह प्रेसिडेन्सी कॉलेज में पढ़ने के लिए दाखिल हुआ। उसके दूसरे वर्ष वह जनरल असेम्बली की संस्था में दाखिल हुआ, जिसे आजकल स्कॉटिश चर्च कॉलेज कहा जाता हैं। इस कॉलेज के अध्यापकगण नरेन की बुद्धिमत्ता देखकर चमत्कृत हो जाते थे। प्रधानाध्यापक श्री विलियम हेस्टी ने कहा था कि नरेन के समान प्रतिभाशाली छात्र उन्होंने आज तक नहीं देखा। नरेन बहुत पढ़ाई करता था तथा विभिन्न विषयों पर अनेकों पुस्तकें पढ़ा करता था। उसने १८८१ ई. में बी.ए. (प्रथम) की परीक्षा उत्तीर्ण कर १८८४ ई. में बी.ए. की डिग्री प्राप्त की।

नरेन ने चार या पाँच वर्षों तक संगीत की शिक्षा भी प्राप्त की थी। उसने अनेक प्रकार के वाद्य-यन्त्रों को बजाना भी सीख लिया था तथा एक उत्कृष्ट गायक के रूप में उसकी ख्याति भी हुई थी। इसी वजह से उसे अनेक बार सभाओं में गाने के लिए आमन्त्रित किया जाता। सभाओं में वह खूब हँसी-मजाक करता, परन्तु उसे बौद्धिक चर्चाओं में विशेष रस प्राप्त होता। अपने मित्रों एवं बुजुर्गों के साथ वह अक्सर गम्भीर विषयों पर चर्चा किया करता था। तर्क करने में उसे विशेष महारत हासिल थी और कुछ लोग ही उसके सामने टिक पाते थे।

इसी समय नरेन धर्म-विषयक समस्याओं में विशेष रुचि लेने लगा। अन्य नवयुवकों की भाँति नरेन भी ब्राह्मसमाज का सदस्य बन गया तथा श्री केशवचन्द्र सेन की वक्तृताओं को सुनने लगा। समाज में उसे अक्सर गाने के लिए आग्रह किया जाता। परन्तु एक प्रश्न उसे सदा कष्ट पहुँचाता कि ईश्वर का कोई अस्तित्व भी है या नहीं अथवा क्या किसी ने आज तक उसे देखा भी है। इस प्रश्न के उचित समाधान हेतु वह अनेक धार्मिक नेताओं के समक्ष गया जिसमें श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर भी थे। परन्तु कोई भी उसकी शंकाओं का समाधान नहीं कर सका।

५

नरेन श्रीरामकृष्ण से मिले

धर्म में नरेन की रुचि थी, परन्तु हिन्दूधर्म की अनेक शिक्षाओं पर से उनका विश्वास उठ चुका था। अत: उन्हें यह समझ में नहीं आ रहा था कि किस धर्म पर विश्वास करें। वे बहुत-से धार्मिक नेताओं के पास गये, परन्तु किसी से भी उन्हें सहायता नहीं मिली। एक बार उन्होंने

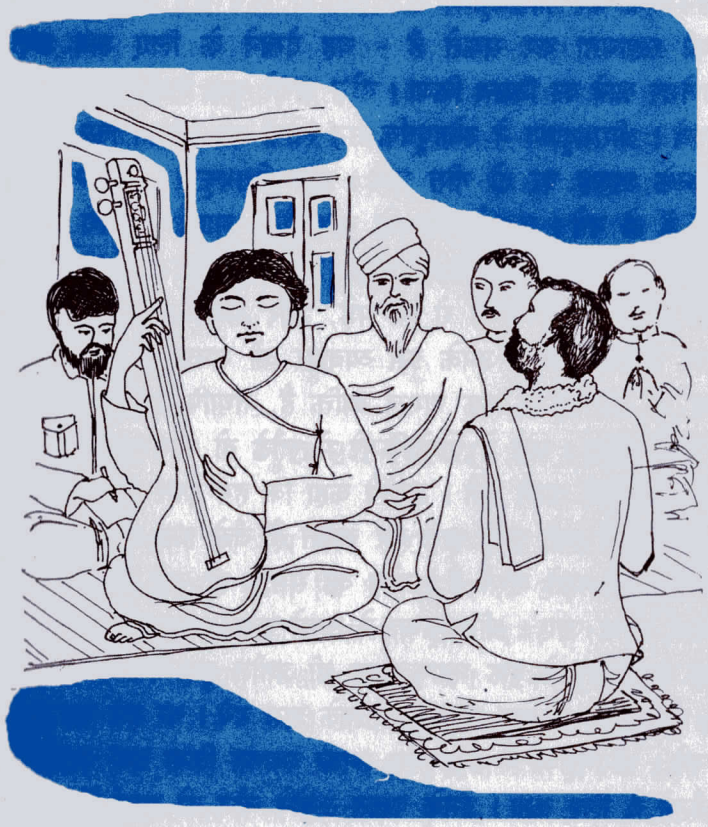

नरेन ने उनके आग्रह पर दो गीत गाये

श्रीरामकृष्ण से मिलने का निश्चय किया। श्रीरामकृष्ण एक महान् हिन्दू सन्त थे। वे हुगली जिले के कामारपुकुर ग्राम से आये थे। उस समय वे कोलकाता के निकट दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में निवास कर रहे थे। वे ध्यान, प्रार्थना एवं सदैव ईश्वर का चिन्तन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते थे। कई लोग उनके पास आकर अपनी आध्यात्मिक समस्याओं को सुलझाया करते।

नरेन ने अपने शिक्षक श्री हेस्टी और अपने एक रिश्तेदार से उनके सम्बन्ध में सुना था। कोलकाता में इन्हीं रिश्तेदार के घर पर उन्होंने एक बार श्रीरामकृष्ण के दर्शन भी किये थे। श्रीरामकृष्ण कैसे उनकी सहायता कर सकते हैं - यह देखने के लिए अब उन्होंने दक्षिणेश्वर जाने का निश्चय किया। नरेन अपने कुछ मित्रों को अपने संग ले गये। श्रीरामकृष्ण ने स्नेहपूर्वक उन लोगों का स्वागत किया। नरेन ने उनके आग्रह पर दो गीत गाये। तब श्रीरामकृष्ण उन्हें एक दूसरे कमरे में ले गये। उन्होंने नरेन के साथ ऐसी आत्मीयता-भरा व्यवहार किया मानो उनका कोई खोया हुआ मित्र बहुत दिनों के बाद लौट आया हो। आनन्द से वे रो भी पड़े, और अपने हाथों से नरेन को मिठाई खिलाई। नरेन उनके इस व्यवहार को समझ न सके। उन्होंने सोचा कि श्रीरामकृष्ण एक पागल व्यक्ति हैं, तथापि उन्होंने पुनः आने का वचन दिया। जब वे दोनों कमरे में लौटे तो श्रीरामकृष्ण ईश्वर के सम्बन्ध में बातें करने लगे। उन्होंने कहा कि हम ईश्वर को देख सकते हैं और उनसे उसी तरह बातें कर सकते हैं जैसे हम अपने मित्रों को देखते हैं एवं बातें करते हैं। नरेन को समझा ही नहीं कि उनके बारे में क्या सोचा जाए। श्रीरामकृष्ण ने उनसे एक अद्‌भुत ढंग से बर्ताव किया था परन्तु वे एक महान् सन्त भी प्रतीत हुए थे।

एक महीने के बाद नरेन पुनः उनके पास गये। पर इस बार अकेले ही गये। श्रीरामकृष्ण ने स्नेहपूर्वक उनका स्वागत किया तथा अपने पास ही बैठने के लिए कहा। उसके पश्चात् उन्होंने नरेन को स्पर्श किया। इस स्पर्श के कारण नरेन को एक अद्‌भुत अनुभव हुआ। दीवारें और कमरा

जोरों से घूमने लगे और कहीं शून्य में विलीन हो गये। नरेन को लगा कि उनकी मृत्यु हो जाएगी। वे डर गये और चिल्ला उठे, "आप मुझे यह क्या कर रहे हैं? घर में मेरे माता-पिता हैं।"

श्रीरामकृष्ण जोरों से हँसे और उनकी छाती को सहलाने लगे। उन्होंने कहा, 'ठीक है, अभी उसे यहीं रहने दो। समय आने पर सब कुछ होगा।'" इस स्पर्श से वह अद्‌भुत अनुभव खत्म हो गया तथा नरेन को सभी कुछ पूर्ववत् ही लगने लगा।

जब नरेन तीसरी बार श्रीरामकृष्ण से मिलने गये, तब भी उन्हें ऐसा ही अनुभव हुआ। श्रीरामकृष्ण के स्पर्श मात्र से नरेन पुनः बाह्य ज्ञान खो बैठे। वे समझ ही नहीं पाये कि क्या हो गया। उनका शरीर और मस्तिष्क दोनों बलवान थे, फिर भी ये महापुरुष केवल स्पर्श मात्र से ही उन्हें न जाने क्या कर देते थे। वे इसका कुछ भी रहस्य समझ नहीं पाते थे। फिर भी वे यह समझ गये थे कि श्रीरामकृष्ण कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। वे अब उनपर बहुत श्रद्धा करने लगे थे, यद्यपि उनके मन में अब भी बहुत-से प्रश्न अनुत्तरित रह गये थे।

६

गुरु एवं शिष्य

अवसर मिलने पर अब नरेन श्रीरामकृष्ण के पास अक्सर जाने लगे। उन्होंने अनुभव किया कि श्रीरामकृष्ण ही उन्हें सबसे अधिक स्नेह करते हैं। वे सदैव ही उनकी राह देखा करते हैं।

श्रीरामकृष्ण का पूरा विश्वास था कि एक दिन नरेन बहुत महान् आदमी बनेगा। वे इस बात को अन्य भक्तगणों के समक्ष भी कहा करते थे एवं नरेन के अनेक सद्‌गुणों का बखान किया करते थे। वे कहते कि यदि अन्य भक्तगण तारे हैं तो नरेन उनमें सूर्य के समान है। वे कहा करते कि नरेन एक मुक्त पुरुष है और उसका जन्म दूसरों की सहायता करने के

श्रीरामकृष्ण ने कहा, "यदि तुम मेरी बातों पर विश्वास नहीं करते तो यहाँ क्यों आया करते हो?"

लिए ही हुआ है। श्रीरामकृष्ण का नरेन पर पूर्ण विश्वास था। वे जानते थे कि नरेन कभी कोई गलत काम कर ही नहीं सकता।

नरेन भी श्रीरामकृष्ण से गहन प्रेम करते थे। यद्यपि वे पढ़ाई-लिखाई में व्यस्त रहते थे तो भी श्रीरामकृष्ण से मिलने दक्षिणेश्वर जाया करते थे। श्रीरामकृष्ण नरेन के गीतों को सुनकर मुग्ध हो जाते और समाधि में चले जाते थे। नरेन एक स्वतन्त्र-विचारक थे। वे किसी भी चीज़ को पूरी तरह परखे बिना उसपर यूँही विश्वास नहीं करते थे। यदि श्रीरामकृष्ण की किसी बात को वे तर्क-संगत नहीं पाते तो उनसे भी

तर्क कर बैठते थे। एक बार श्रीरामकृष्ण ने कहा, "यदि तुम मेरी बातों पर विश्वास नहीं करते तो यहाँ क्यों आया करते हो?"

नरेन ने उत्तर दिया, "मैं आपसे प्रेम करता हूँ इसलिए यहाँ आता हूँ। परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि मैं आपकी सभी बातों को बिना विचारे ही मान लूँ।" नाराज़ होने के बदले श्रीरामकृष्ण इस उत्तर को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए; उन्हें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि नरेन इतना स्वतन्त्र विचारक है।

इस प्रकार समय बीतता गया। नरेन की भक्ति श्रीरामकृष्ण के प्रति बढ़ती ही गयी। जो विभिन्न शिक्षाएँ श्रीरामकृष्ण नरेन को देते, वे भी उनको आचरण में लाने लगे। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें ध्यान करना सिखाया, और नरेन भी ध्यान तथा विभिन्न आध्यात्मिक साधनाओं में मग्न होने लगे।

परन्तु नरेन को बड़े बुरे समय का सामना करना पड़ा। १८८४ के प्रारम्भ में उनके पिता की मृत्यु हो गयी। नरेन ही सबसे बड़े पुत्र थे। अतः परिवार का दायित्व उनके ही कन्धों पर आ पड़ा। उनके पिता ने कुछ भी रुपये-पैसे बचा न रखे थे। नरेन को परिवार हेतु भोजन जुटाना भी कठिन हो गया। वे अक्सर बिना खाये ही रह जाते थे ताकि अन्य लोगों के लिए कुछ अधिक बच जाए। उन्होंने नौकरी की तलाश की, परन्तु सफलता हाथ न लगी। बाद में उन्होंने एक वकील के दफ़्तर में काम किया, पाठशाला में पढ़ाया तथा इसी तरह के अन्य काम भी किये। परन्तु ये सब स्थायी नौकरियाँ न थीं, इसलिए नरेन को अपने परिवार के भरण-पोषण करने में कठिनाई हो रही थी। इन सब कष्टों के बावजूद उनके पास रहने के लिए एक घर अवश्य था। परन्तु उसके बारे में भी कलह शुरू हो गया था। उनके कुछ सम्बन्धियों ने समय का लाभ उठाने की सोचकर घर के एक बड़े हिस्से पर अधिकार जमाने की चेष्टा की। अदालत में यह मामला कई दिनों तक चला। सौभाग्यवश नरेन के परिवार के पक्ष में अदालत का फैसला सुनाया गया।

७

काशीपुर उद्यान-भवन में

पिता की मृत्यु के पश्चात् नरेन का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था। उनके मस्तिष्क में खलबली मची हुई थी। श्रीरामकृष्ण के चरणतले ही उन्हें शान्ति प्राप्त होती थी। १८८५ ई. में श्रीरामकृष्ण को गले के घाव से अनेक कष्ट झेलने पड़े। उस घाव ने भीषण रूप धारण किया जो बाद में भयंकर रोग कैंसर में परिणत हुआ। उनके शिष्य एवं भक्त उनकी सहायता के लिए आगे आये। काशीपुर में एक उद्यान-भवन किराये पर लिया गया। श्रीरामकृष्ण को वहाँ पर लाया गया और उनके युवा शिष्यगण भी वहाँ रहकर उनकी सेवा में रत हो गये।

नरेन अधिकतर समय काशीपुर में ही बिताते थे। पारिवारिक समस्याओं को सुलझाने हेतु उन्हें कभी-कभी कोलकाता जाना पड़ता था। परन्तु अन्य समय वे श्रीरामकृष्ण के निकट ही व्यतीत करते थे। नरेन एवं अन्य शिष्यगण अपने गुरुदेव की सेवा में लग्न हो गये। नरेन ही उनके नेता थे। जब भी उन्हें समय मिलता वे एक साथ मिलकर गाते, पढ़ते अथवा श्रीरामकृष्ण के दिव्य गुणों की आपस में चर्चा करते। नरेन ईश्वर का दर्शन प्राप्त करना चाहते थे क्योंकि उनकी यह दृढ़ धारणा बन गयी थी कि यही जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें ध्यान-सम्बन्धी अनेक हिदायतें दी थीं। नरेन अधिक समय ध्यान आदि में ही व्यतीत किया करते थे। ध्यान में उन्हें अद्‌भुत अनुभव हुआ करते; कभी-कभी तो वे बाहरी जगत् को पूर्णतया भूल ही जाया करते थे।

एक बार नरेन और महान् कवि एवं नाटककार श्री गिरीशचन्द्र घोष एक पेड़ के नीचे ध्यान में बैठे थे। गिरीश ने ध्यान करने की चेष्टा की, परन्तु वहाँ मच्छरों की भरमार थी। मच्छर उनके सिर के चारों ओर

भनभना रहे थे एवं उन्हें काट रहे थे। अत: वे ध्यान करने में असमर्थ हो रहे थे। उन्हें यह जानने का कौतुहल हुआ कि क्या नरेन ध्यान करने में समर्थ हो रहे हैं। इसलिए उन्हें देखने के लिए उन्होंने अपनी आँखें खोलीं। उनको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नरेन का पूरा शरीर कम्बल की तरह मच्छरों से छा गया था। परन्तु नरेन को इसका जरा भी भान न था क्योंकि वे तो ध्यान में तल्लीन थे।

एक बार संध्या समय नरेन को एक अति उच्च आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त हुई। ध्यान करते समय उन्हें बाह्य जगत् का कुछ भी भान न रहा और अपने शरीर का भी विस्मरण हो गया। वे केवल ईश्वर के विचार में ही पूर्णतया मग्न हो गये। उनका मस्तिष्क पूरी तरह से ईश्वर के ध्यान में निमग्न हो गया। उन्हें अपार आनन्द की अनुभूति हुई। इस अनुभूति का नाम ही समाधि है।

श्रीरामकृष्ण नरेन को भविष्य के महत् कर्मों हेतु प्रशिक्षित करने लगे। उन्होंने नरेन से कहा कि वह युवा भक्तों का ध्यान रखे एवं यह भी ख्याल रखे कि वे अपना आध्यात्मिक जीवन सुचारु रूप से व्यतीत कर सकें। एक दिन श्रीरामकृष्ण ने उन सबको साधुओं की भाँति घर-घर से भिक्षा माँगने हेतु भी भेजा। भिक्षावृत्ति से लाया गया भोजन श्रीरामकृष्ण को निवेदित किया गया। उन्होंने उस भोजन को आनन्दपूर्वक ग्रहण किया और कहा कि ऐसा भोजन बड़ा पवित्र होता है। उन्होंने उन लोगों को गेरुआ वस्त्र भी प्रदान किये और इस तरह उन्हें संन्यासी बना दिया।

अन्त बहुत शीघ्र ही आ गया। १६ अगस्त, १८८६ ई. को सभी शिष्यों को शोक के अपार सागर में निमज्जित करते हुए श्रीरामकृष्ण महासमाधि में निमग्न हो गये। कुछ लोग काशीपुर उद्यान-भवन में ही कुछ दिनों तक रह गये और कुछ पढ़ाई करने हेतु घर लौट गये। परन्तु, नरेन, उन सभी गुरुभाइयों को एक संन्यासी-सम्प्रदाय में निबद्ध करने हेतु चेष्टा करने लगे।

८
वराहनगर मठ में

युवा संन्यासीगण काशीपुर उद्यान-भवन में अधिक काल तक निवास न कर सके, क्योंकि उसका किराया बहुत अधिक था। परन्तु एक भक्त की मदद से उन्होंने वराहनगर में एक कम किरायेवाले घर को ले लिया। यहीं पर उन्होंने रामकृष्ण संघ के पहले मठ की स्थापना की। भवन पुराना

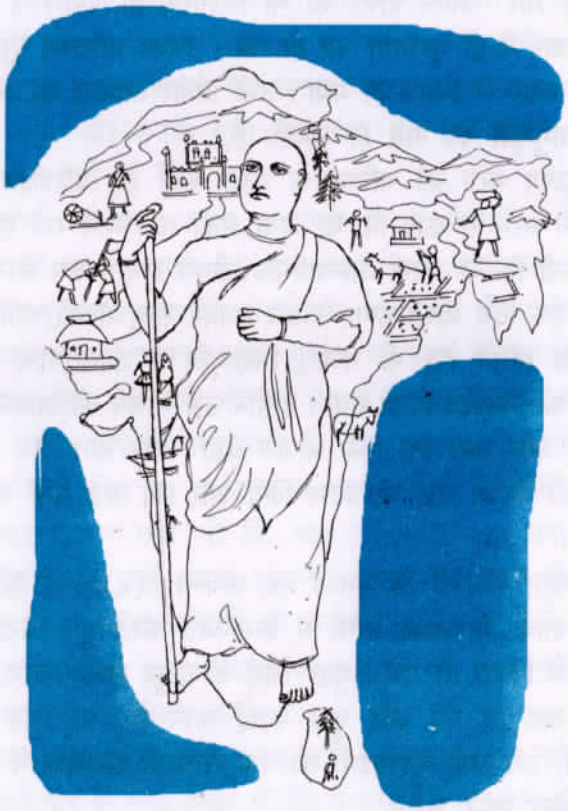

वे वाराणसी तथा अन्यान्य स्थानों में गये और उसके बाद हिमालय में भी भ्रमण किया।

एवं जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था। उसका बागान झाड़ियों से भरा और उसके बिलों में नाग रहते थे। स्थानीय लोगों की मान्यता थी कि वहाँ भूतों का भी निवास है। वह एक विचित्र जगह थी, परन्तु किराया कम होने की वजह से युवा संन्यासीगण वहाँ रह रहे थे। वह एकान्त एवं शान्त जगह भी थी। वे लोग बहुत दरिद्र थे। कपड़े भी सीमित थे और उन्हें पर्याप्त भोजन तक उपलब्ध न था। महीनों तक उन लोगों के पास चावल और उबली सब्जियों के अलावा खाने के लिए कुछ न रहता था।

नरेन और उनके गुरुभाई इस सबकी बिल्कुल भी परवाह न करते। वे केवल ईश्वर चिन्तन किया करते। नरेन उनके नेता थे। वे उन भाइयों के घर जाते थे । जो लोग घर लौट गये थे, उन लोगों को मठ में आने का अनुरोध करते। नरेन उन लोगों की देखभाल करते तथा सदैव ईश्वर चिन्तन करने हेतु उन्हें प्रोत्साहित करते। वे लोग घण्टों ध्यान किया करते, भजन गाते और विभिन्न मतों एवं धर्मों के आदर्शों पर चर्चा करते। वे लोग श्रीरामकृष्ण द्वारा बताये गये मार्ग पर चलने की भरसक कोशिश करते।

इसी समय उन्होंने संन्यास दीक्षा ली। उन्होंने अपने नये नाम भी रख लिये! किन्तु नरेन ने अपना कोई स्थायी नाम नहीं रखा, और अपने भारत-भ्रमण के दौरान समय-समय पर अपना नाम भी बदलते गये। कभी वे अपना नाम 'विविदिषानन्द' और कभी अन्य नाम रख लेते। अब, लोग जब उनसे बातचीत करते तो उन्हें केवल 'स्वामीजी' कहा करते।

९
परिव्रजन काल

स्वामीजी (नरेन) वराहनगर मठ में दो वर्ष तक रहे। कुछ संन्यासीगण मठ छोड़कर विभिन्न स्थानों में परिव्राजक के रूप में घूम रहे थे। हिन्दू संन्यासी ऐसा कई हजार वर्षों से करते आ रहे हैं।

स्वामीजी भी अस्थिर हो उठे। १८८८ ई. में वे मठ छोड़कर दो सप्ताह के लिए वाराणसी चले गये। वहाँ रहते समय उनकी भेंट दो महापुरुषों —त्रैलंग स्वामी और स्वामी भास्करानन्द से हुई। एक दिन यहाँ एक रोचक घटना घटी। एक बार स्वामीजी माँ दुर्गा के मन्दिर का दर्शन करके लौट रहे थे। अचानक, बन्दरों के एक झुण्ड ने उनका पीछा किया। स्वामीजी ने सोचा कि वे उन्हें काट देंगे इस भय से उन्होंने भी दौड़ना शुरू किया। परन्तु बन्दरों ने फिर भी उनका पीछा करना न छोड़ा। स्वामीजी जितनी भी तेजी से दौड़ते, बन्दर भी उनका पीछा करते। वे समझ नहीं पा रहे थे कि क्या किया जाय क्योंकि उनका दम फूलने लगा था। उसी समय एक वृद्ध संन्यासी जो उसी मार्ग पर से गुजर रहे थे - उन्हें पुकारकर कहा,"रुक जाओ ! दुष्टों का सामना करो।" स्वामीजी रुक गये, पीछे मुड़े एवं बन्दरों का सामना कर खड़े हो गये। जब उन्होंने ऐसा किया तो बन्दर घबड़ाकर भाग खड़े हुए। स्वामीजी इसपर जोरों से ठहाका मारकर हँसे।

उसके पश्चात् उन्होंने उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों का दौरा किया। हाथरस रेल्वे स्टेशन पर वहाँ के स्टेशन मास्टर, श्री शरच्चन्द्र गुप्त उनके शिष्य बन गये। उन्होंने स्वामीजी का अनुसरण किया और बाद में अपना नाम रखा 'स्वामी सदानन्द'। वे दोनों साथ ही ऋषिकेश गये और वहाँ कुछ समय तक ध्यान-तपस्या में बिताया। परन्तु वहाँ का जीघन बड़ा कठोर था जिसके फ़लस्वरूप उनका स्वास्थ्य टूट गया। उन्हें बाध्य होकर वराहनगर मठ में लौट आना पड़ा।

एक वर्ष के पश्चात् स्वामीजी पुन: परिव्रजन करने हेतु निकल पड़े। वे गाज़ीपुर गये, जहाँ प्रसिद्ध महात्मा श्री पवहारी बाबा से उनकी मुलाक़ात हुई। फिर वे कोलकाता वापस लौट आये। १८९० ई. में उन्होंने वराहनगर मठ को पुन: छोड़ा और कई वर्षों तक नहीं लौटे। इस बार एक गुरुभाई उनके साथ गये। वे वाराणसी तथा अन्यान्य स्थानों में गये और उसके बाद हिमालय में भी भ्रमण किया। वे लोग ऋषिकेश में रुके परन्तु ज्वर से आक्रान्त हो गये। इसके बाद स्वामीजी

नीचे आकर मेरठ में रहे। कुछ अन्य गुरुभाइयों ने भी इस दौरान उनके साथ वहाँ निवास किया।

भ्रमण के दौरान स्वामीजी को अच्छे-बुरे बहुत-से अनुभव हुए। अधिकतर बहुत समय तक उन्हें भोजन न मिलता और अक्सर वे भूखे रहते एवं थकान का अनुभव करते। परन्तु उन्हें कई सहृदय व्यक्ति भी मिले जिन्होंने उनकी सहायता की। अनेकों बार दरिद्र और निम्न जाति के लोगों ने ही उन्हें भोजन और रहने की जगह दी। एक बार उत्तर प्रदेश के एक रेल्वे स्टेशन पर वे जलती धूप में बैठे थे। सारे दिन उन्होंने कुछ न खाया था और पानी तक न पीया था क्योंकि उनके पास रुपये न थे। एक बनिया उनकी हँसी उड़ाने लगा। उसका विचार था कि आदमी को संन्यासी नहीं बनना चाहिये। उसने स्वामीजी से कहा, "देखो, मैं कितना अच्छा भोजन कर रहा हूँ। मेरे पास पीने के लिए कितना ठण्डा पानी है। मैं रुपये कमाता हूँ इसीलिए ये सब उत्तम वस्तुएँ मेरे पास रहती हैं। तुम रुपये नहीं कमाते इसीलिए भूखे रहा करते हो।" स्वामीजी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर बाद ही एक आश्चर्यजनक घटना घटी। एक मिठाई की दूकानवाला आया और उसने स्वामीजी को भोजन निवेदित किया। उसने एक आसन बिछाया और भोजन एवं जल स्वामीजी के सामने रख दिये। उसके बाद उसे ग्रहण करने हेतु स्वामीजी से अनुरोध करने लगा।

स्वामीजी ने कहा, "शायद आपको कुछ गलतफहमी हो रही है। मुझे स्मरण नहीं आता कि मैंने इसके पहले आपको कहीं देखा भी हो।"

परन्तु मिठाईवाले ने कहा,"नहीं बाबाजी, आप ही वे व्यक्ति हैं जिसे मैंने सपने में देखा है। श्रीरामजी ने मेरे सपने में आकर मुझसे ये सब चीज़ें लेकर रेल्वे स्टेशन पर आपको दे आने के लिए कहा है। जब मैं यहाँ आया तो मैंने तुरन्त ही आपको पहचान लिया। भोजन के ताजे रहते ही कृपया इसे ग्रहण करने की दया करें।" स्वामीजी की आँखों से कृतज्ञता के आँसू बह निकले और उन्होंने उस मिठाईवाले को बार-बार धन्यवाद दिया। परन्तु उस मिठाईवाले ने इसको रामजी की इच्छा ही बतायी। बनिया यह सब देखकर दंग हो गया। वह इस दृश्य

को देख रहा था। वह वस्तुस्थिति समझ गया और स्वामीजी के चरणों पर गिरकर क्षमा माँगने लगा।

मेरठ के बाद स्वामीजी ने अकेले ही भ्रमण करने का निश्चय किया। उन्होंने अपने गुरुभाइयों से कह दिया कि वे उनका पीछा न करें। स्वामीजी वीरों की भूमि, राजपुताने की ओर चल पड़े। जब स्वामीजी अलवर में थे तब राजा मंगलसिंह के साथ उनकी एक सुरुचिपूर्ण चर्चा हुई। राजा ने कहा कि उनका मूर्ति-पूजा में कोई विश्वास नहीं है और वे लकड़ी, पत्थर या धातु की पूजा नहीं कर सकते। इसके उत्तर में, स्वामीजी ने राजा की एक तस्वीर लाने के लिए कहा। उस तस्वीर को हाथ में रखकर स्वामीजी ने उनके दीवान से उस तस्वीर पर थूकने के लिए कहा। इसपर दीवान बहुत घबड़ा गया और उसने स्वामीजी से कहा, "यह क्या स्वामीजी ! यह हमारे महाराज की प्रतिछवि है। मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ?" अब स्वामीजी राजा से बोले, "देखिये महाराज, यद्यपि आप साक्षात् इस तस्वीर में मौज़ूद नहीं हैं, तो भी आपका सेवक इसमें आपकी ही छाया को देखता है। यह तस्वीर तो मात्र कागज़ की बनी है; परन्तु आपके सेवक इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं क्योंकि इसके द्वारा उन्हें आपका स्मरण होता है। उसी तरह, भक्तगण भगवान की पूजा मूर्ति में करते हैं क्योंकि उससे उनके मन में ईश्वर के किसी विशिष्ट रूप का स्मरण होता है और उनका चित्त एकाग्र होता है। वे यथार्थ में उसी एक ईश्वर की ही पूजा करते हैं और किसी पत्थर या धातु की नहीं।" तब राजा ने दोनों हाथ जोड़कर स्वामीजी से कहा, "स्वामीजी, मैंने आज तक मूर्ति-पूजा का अर्थ नहीं समझा था। आपने मेरी आँखें खोल दी हैं।"

स्वामीजी ने विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और माउण्ट आबू में खेतड़ी के महाराजा से भेंट की। उसके बाद वे महाराजा के साथ खेतड़ी गये। महाराजा उनके भक्तिमान शिष्य बन गये तथा वे दोनों आपस में बहुत देर तक चर्चा किया करते। स्वामीजी भी महाराजा से बहुत प्रेम करते एवं दोनों में एक अद्‌भुत प्रेमभरा सम्बन्ध स्थापित हो गया था। महाराजा ने भी भविष्य में स्वामीजी को बहुत सहायता की थी।

उस तस्वीर को हाथ में रखकर स्वामीजी ने उनके दीवान से उस तस्वीर पर थूकने के लिए कहा।

परन्तु स्वामीजी पुनः भ्रमण करने के लिए व्यग्र हो गये। खेतड़ी छोड़कर वे मुम्बई से होते हुए दक्षिण भारत गये। कुछ समय तक वे मैसूर के महाराजा के साथ रहे, जो स्वामीजी के अनन्य मित्र एवं प्रशंसक बन गये। महाराजा ने स्वामीजी को उनके कार्य में सहायता देने का वायदा किया। उन्होंने स्वामीजी की आवाज़ को रेकॉर्ड करके अनेक वर्षों तक अपने महल में रखा था।

मैसूर से स्वामीजी रामेश्वरम् की ओर चले। मार्ग में वे मदुरै में रुके जहाँ उन्होंने रामनाद के राजा से भेंट की। राजा एक सज्जन पुरुष थे

और कुशल प्रशासक भी थे। वे स्वामीजी के प्रशंसक बन गये। स्वामीजी ने भारत के उद्धार हेतु अपने बहुत-से विचारों से उन्हें अवगत कराया। राजा ने स्वामीजी की सहायता करने का वचन दिया। उसके बाद स्वामीजी रामेश्वरम् गये और तदुपरान्त भारत के दक्षिणतम छोर कन्याकुमारी गये। वे समुद्र में तैरकर एक बड़ी चट्टान पर पहुँचे और वहाँ बैठकर अपनी भारतमाता के विषय में गम्भीर चिन्तन में डूब गये। उन्होंने उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक पूरे भारत को देख लिया था। उन्होंने लोगों के दुःख-दर्द और दरिद्रता को बहुत मात्रा में देखा था तथा उनके कष्टों को वे अब अच्छी तरह समझ सकते थे। हाँ, भारत का साधारण जनमानस बहुत ही दरिद्र था, परन्तु स्वामीजी ने यह भी देखा था कि वे गरीब लोग कितने सज्जन और सहृदय हैं। उन्हें कितना कठोर परिश्रम करना पड़ता था जिसके बदले में उन्हें बहुत ही कम रुपये प्राप्त होते थे।

स्वामीजी लोगों के दुःख-कष्टों को बड़ी गम्भीरतापूर्वक अनुभव करते और उनके लिए कुछ करने के लिए व्यग्र हो जाते। परन्तु एक दरिद्र गृहहीन संन्यासी भला कर ही क्या सकता था? उन्होंने लोगों की मदद के लिए राजाओं, धनवान् और शिक्षित लोगों से फ़रियाद की; उन्होंने युवा छात्रों से भी इसके लिये याचना की। उन लोगों ने एक संन्यासी एवं धर्माचार्य के नाते उनकी बातें सुनीं और उनकी प्रशंसा भी की, परन्तु उन्होंने उनके विचारों को अमल में नहीं लाया। स्वामीजी निराश हुए और सोचने लगे कि वे कैसे अपने देशवासियों की सहायता करें।

परन्तु स्वामीजी श्रीरामकृष्ण के अनुयायी थे, और वे सदैव अपने गुरुदेव की इच्छा को ही कार्यरूप में परिणत करना चाहते थे। उन्हें लगा कि श्रीरामकृष्ण चाहते हैं कि वे अमेरिका की विश्व धर्म महासभा में भाग लें। वह एक अपरिचित एवं सुदूर देश था, और वहाँ जाना भी कोई हँसी-खेल न था। परन्तु उन्हें ऐसा लगा कि पश्चिम में जाकर ही वे अपने देशवासियों की सहायता कर सकेंगे। उसके बाद ईश्वर की इच्छा को परिपूर्ण करने के लिए उन्होंने अमेरिका की यात्रा करने का

वे समुद्र में तैरकर एक बड़ी चट्टान पर पहुँचे और वहाँ बैठकर अपनी भारतमाता के विषय में गम्भीर चिन्तन में डूब गये।

निश्चय किया ... कन्याकुमारी की उस चट्टान पर बैठकर ही उन्होंने ऐसा संकल्प किया था।

उसके पश्चात् स्वामीजी मद्रास गये जहाँ बहुत-से बुद्धिमान युवकगण उनके उत्साही अनुयायी बने। विभिन्न समुदायों के समक्ष उन्होंने अनेक वक्तृताएँ दीं और बहुत-से विशिष्ट एवं शिक्षित लोगों से भेंट की। उन्होंने अमेरिका जाने के सम्बन्ध में अपने विचारों से उन सबको अवगत कराया। उनके युवा शिष्यगण इस विषय में बड़े उत्साही थे, और उनकी अमेरिका टिकट के लिए चन्दा एकत्र करने में जुट गये।

इसी समय खेतड़ी के महाराजा ने स्वामीजी को अपनी राजधानी आने हेतु निमन्त्रण भेजा। महाराजा ने ही स्वामीजी के लिए कनाडा जाने हेतु एक प्रथम श्रेणी का टिकट और जहाज-यात्रा के लिए अन्यान्य बहुत-सी सामग्री की व्यवस्था कर दी। महाराजा ने उनसे 'विवेकानन्द' नाम ग्रहण करने का अनुरोध भी किया। स्वामीजी ने इस नाम को स्वीकार किया और जीवन के अन्तिम समय तक वे स्वामी विवेकानन्द नाम से ही प्रसिद्ध रहे।

१०
अमेरिका की ओर

३१ मई, १८९३ को स्वामी विवेकानन्द मुम्बई से जहाज द्वारा रवाना हुए। जहाज श्रीलंका, सिंगापुर, हाँग काँग, चीन और जापान के बन्दरगाहों पर रुका। यात्रा से स्वामीजी ने बड़ा आनन्द प्राप्त किया। फिर जहाज वैंकुवर (कनाडा) की ओर चल पड़ा। वैंकुवर से रेलगाड़ी द्वारा स्वामीजी शिकागो पहुँचे। रेलगाड़ी में उनकी भेंट एक सुसंस्कृत और धनी महिला सुश्री सेनबोर्न से हुई जो स्वामीजी के व्यक्तित्व से और उनके साथ वार्तालाप करके बहुत प्रभावित हुईं। उन्होंने स्वामीजी से कहा, "यदि आप कभी बोस्टन के निकट मेरे घर पर पधारें, तो आपको अतिथिरूप में पाकर मैं धन्य हो जाऊँगी और मैं आपकी भेंट अन्यान्य विद्वानों और बुद्धिजीवियों से भी करवा दूँगी।" जुलाई के मध्य में स्वामीजी शिकागो पहुँचे। उनके लिए वह एक विचित्र नई दुनिया ही थी। वे शिकागो की विश्व प्रदर्शनी देखने गये जहाँ पर विश्व धर्म महासभा का आयोजन होने जा रहा था। प्रदर्शनी में प्रदर्शित की गई वस्तुओं एवं वैज्ञानिक आविष्कारों को देखकर स्वामीजी आश्चर्यचकित हो गये। विभिन्न मशीनरियों,, औद्योगिक उत्पादों और कला के नमूनों को निहारकर स्वामीजी चमत्कृत हो गये।

कुछ दिनों के पश्चात् स्वामीजी विश्व धर्म महासभा के बारे में जानकारी लेने हेतु सूचना-कार्यालय में गये। उनको यह जानकर निराशा हुई कि धर्म महासभा सितम्बर के पहले शुरू नहीं होगी। इसके अलावा, उन्हें बताया गया कि उन्हें धर्म महासभा के प्रतिनिधि के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकेगा क्योंकि उनके पास किसी सम्प्रदाय या दल के प्रतिनिधि होने के प्रमाण-पत्र नहीं हैं। उन्होंने स्वामीजी को यह भी बताया कि अब तो प्रवेश पाने की तारीख़ भी बीत चुकी है। यह उनके लिए बड़ा आघात था। इससे भी अधिक चिन्ता की बात यह थी कि अब उनके पास पर्याप्त रुपये भी बाकी न थे। उन्हें धर्म महासभा के लिए लगभग दो महीनों तक इन्तज़ार करना था। परन्तु उनके रुपये तो समाप्तप्राय ही थे और उसके बाद भूखों मरने की नौबत आनेवाली थी।

स्वामीजी शिकागो छोड़कर बोस्टन शहर के निकट एक स्थान में चले गये, जहाँ सुश्री सेनबोर्न रहती थीं, क्योंकि उन्हें बताया गया था कि शिकागो की तुलना में वे कम खर्च में वहाँ रह सकेंगे। उन्हें सुश्री सेनबोर्न के स्नेहपूर्ण निमन्त्रण का भी स्मरण हो आया। उनके घर में रहते समय स्वामीजी हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जे. एच. राइट से मिले। प्रोफेसर महोदय से स्वामीजी की विभिन्न विषयों पर बड़ी लम्बी चर्चाएँ हुईं। प्रोफेसर ने स्वामीजी की अपूर्व मेधा को पहचान लिया और उनसे धर्म महासभा में हिन्दूधर्म का प्रतिनिधित्व करने का आग्रह किया। स्वामीजी ने उन्हें बताया कि उनके पास किसी भी संस्था का आधिकारिक पत्र प्राप्त नहीं है। प्रोफेसर ने उत्तर दिया, "स्वामीजी, आपसे परिचय-पत्र की माँग करना ऐसा ही है, मानो सूर्य से यह पूछना कि उसे चमकने का अधिकार किसने दिया है।"

प्रोफेसर राइट ने स्वामीजी की सारी व्यवस्था कर दी। उन्होंने धर्म महासभा समिति के सभापति के नाम पत्र लिखकर स्वामीजी का परिचय दिलवाया। उस पत्र में उन्होंने लिखा था, "ये इतने प्रकाण्ड विद्वान् हैं कि हमारे सभी प्राध्यापकों को एकत्र कर देने पर भी वे इनकी

कुछ घटित होने की प्रतीक्षा में दृढ़ निश्चय करके वे सड़क के किनारे बैठ गये।
उसी समय पास के भवन का दरवाजा खोलकर एक भद्र महिला बाहर आयीं

बराबरी नहीं कर सकेंगे।'' उन्होंने स्वामीजी को शिकागो के लिए एक टिकट भी खरीद दिया। ईश्वर की इच्छा किस तरह पूर्ण हो रही है, यह देखकर स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए।

जब स्वामीजी शिकागो पहुँचे, तो उन्हें पता चला कि उनके द्वारा समिति का पता खो गया है। उन्हें कुछ न सूझा कि क्या किया जाए। वे थक गये थे, और अन्य कोई जगह न मिलने के कारण उन्होंने वह रात्रि रेल के एक खाली डिब्बे में ही बितायी। सुबह उठकर वे उस

सड़क पर चल पड़े जहाँ धनी लोग रहते थे। एक संन्यासी की भाँति वे द्वार-द्वार पर भोजन के लिए भिक्षा माँगने लगे। परन्तु उनके साथ बुरा व्यवहार किया गया और नौकर तक ने उनका अपमान किया क्योंकि भिक्षा माँगना पश्चिम के देशों में निन्दनीय कार्य है। उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि वे क्या करें। अन्त में उन्होंने ईश्वर की इच्छा पर निर्भर होने का निश्चय किया। जब ईश्वर ने ही उन्हें इस पश्चिम देश में कुछ उद्देश्य से लाया है, तो वे ही उनकी देखभाल करेंगे। कुछ घटित होने की प्रतीक्षा में दृढ़ निश्चय करके वे सड़क के किनारे बैठ गये। उसी समय पास के भवन का दरवाजा खोलकर एक भद्र महिला बाहर आयीं। वे स्वामीजी के निकट आयीं और उनसे बोलीं, "महाशय, क्या आप धर्मसभा के प्रतिनिधि हैं?" स्वामीजी ने अपने विषय में उनको बतलाया। उन महिला ने उन्हें अपने घर में आमन्त्रित किया और सेवकों से उनकी देखभाल करने का आदेश दिया। उनके नाश्ते आदि का प्रबन्ध करने के पश्चात् वे स्वामीजी को धर्मसभा के कार्यालय में ले गयीं। स्वामीजी ने अपना परिचय-पत्र दिया और उन्हें प्रसन्नतापूर्वक प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार कर लिया गया। जिन भद्र महिला ने स्वामीजी की सहायता की थी उनका नाम था श्रीमती जॉर्ज डब्ल्यू हेल। वे, उनके पति और बच्चे सभी स्वामीजी के मित्र बन गये।

११

धर्म महासभा में

धर्म महासभा का उद्घाटन सोमवार, ११ सितम्बर, १८९३ ई. को हुआ। उसका आयोजन एक विशाल भवन में किया गया था जिसका नाम था 'हॉल ऑफ कोलम्बस'। अन्य प्रतिनिधियों के साथ स्वामी विवेकानन्द सामने मंच पर बैठे। कैथोलिक चर्च के कार्डिनल

गिब्बन्स बीच में विराजमान हुए। उनके दोनों ओर सभी देशों और धर्मों के प्रतिनिधिगण विराजमान थे। उनमें से कुछ भारत के भी थे। मजुमदार और नगरकर ब्राह्म समाज का; धर्मपाल श्रीलंका के बौद्ध धर्मावलम्बियों का और चक्रवर्ती तथा एनी बेसेण्ट थियोसॉफी का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। करीब चार हजार श्रोताओं का बृहत् समूह वहाँ उपस्थित था।

वह एक भव्य समारोह था, और स्वामी विवेकानन्द इतने लोगों को देखकर घबराहट का अनुभव करने लगे। अध्यक्ष महोदय ने कई बार उनसे भाषण देने का अनुरोध किया, परन्तु स्वामीजी मना करते रहे। देर दोपहर बाद अध्यक्ष महोदय ने उनसे बिना पूछे ही उनके नाम की घोषणा कर दी। अब स्वामीजी के पास कोई चारा न था। वे खड़े हुए और श्रोताओं के सम्मुखीन हुए। उन्होंने श्रोताओं को "अमेरिकावासी बहनो और भाइयो" कहकर सम्बोधित किया। इससे अधिक वे कुछ बोल न सके। श्रोतागण इस सम्बोधन से अत्यन्त मुग्ध हो गये और जोरों से तालियाँ बजाकर उनका अभिनन्दन करने लगे। सैकड़ों लोगों ने खड़े होकर उच्च स्वर से उनका स्वागत किया। शोरगुल चन्द मिनटों तक चलते रहा। जब शान्ति स्थापित हुई तो स्वामीजी ने अपना भाषण जारी रखा। वह एक छोटा-सा भाषण था, परन्तु उसमें उन्होंने यह दर्शाया कि हिन्दूधर्म सभी धर्मों को सत्य समझता है और वह सभी धर्मों को स्वीकार भी करता है। अन्य वक्ताओं ने केवल अपने ही धर्म के विषय में कहा था। स्वामीजी सभी धर्मों में निहित सत्य के विषय में बोले। श्रोताओं ने उनके भाषण को बहुत पसन्द किया। दरअसल, उन्हें अन्य सभी वक्ताओं की तुलना में स्वामीजी का भाषण ही सबसे अच्छा लगा। वे रातों-रात प्रसिद्ध हो गये, और समाचार पत्रों ने उनकी तारीफ़ के पुल बाँध दिये।

स्वामी विवेकानन्द ने धर्म महासभा में अनेक वक्तृताएँ दीं। उनमें "हिन्दूधर्म पर लेख" सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ। स्वामीजी को बहुत पसन्द किया जाता था, और लोगों को अन्त तक बिठा रखने के लिए

"अमेरिकावासी बहनो और भाइयो"

उनके भाषणों को सबसे अन्त में रखा जाता था। कभी-कभी जब बड़ी मात्रा में लोग ऊबकर जाने लगते, तब अध्यक्ष महोदय घोषणा करते कि सभा के विसर्जित होने के पूर्व स्वामी विवेकानन्द एक छोटा-सा भाषण देंगे। तब सभी लोग उनका भाषण सुनने के लिए खुशी से इन्तज़ार करते। स्वामीजी के बड़े-बड़े चित्र छापे गये और शिकागो की सड़कों पर लगाये गये। सब लोग उनके ही विषय में चर्चा करते।

भारत के समाचार-पत्र भी शिकागो में उनकी विजय के समाचार से भरे पड़े थे, और भारत के लोग उनकी विजय से गर्व का अनुभव कर रहे

थे। वराहनगर में उनके गुरुभ्रातागण विशेष रूप से आनन्दित हुए जब उन्हें पता चला कि उनका 'नरेन' ही प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द है।

स्वामी विवेकानन्द भारत के दरिद्र लोगों को भूले न थे। वे उनके ही विषय में विचार किया करते कि किस तरह उन लोगों की मदद की जाए। जब वे प्रसिद्ध हो गये तो बहुत-से धनी लोग उन्हें अपने घर में आमन्त्रित करने लगे। परन्तु दिये जानेवाले ऐशो-आराम उन्हें बिल्कुल अच्छे नहीं लगते थे। धर्म महासभा में उनकी विजय की उस रात में वे एक धनी व्यक्ति के अतिथि थे और सोने के लिए उन्हें एक

भारत के दरिद्र लोगों का विचार उनके मन में आया और रोते हुए वे जमीन पर ही सो गये।

भव्य आरामदेह शय्या दी गयी थी। स्वामीजी उसका व्यवहार न कर सके। वे कैसे कर सकते थे? भारत के दरिद्र लोगों का विचार उनके मन में आया और रोते हुए वे जमीन पर ही सो गये।

१२

अमेरिका में आध्यात्मिक आचार्य के रूप में

धर्म महासभा समाप्त हो गयी थी और स्वामी विवेकानन्द अब एक प्रसिद्ध व्यक्ति बन गये थे। उनके पास क्लबों, चर्चों तथा बहुत-सी अन्य संस्थाओं में भाषण देने के लिए बहुत-से निमन्त्रण आने लगे। कुछ दिनों बाद वे एक भाषण ब्यूरो के साथ जुड़ गये और भाषण देते हुए अनेक स्थानों में भ्रमण करने लगे। एक अच्छे वक्ता के सभी गुण उनमें विद्यमान थे — अच्छी आवाज़, भाषा तथा व्यक्तित्व — और उनके विचार भी लोगों को आकर्षित करते थे। कितने उदात्त विचारों को उन्होंने व्यक्त किया था ! सारे अमेरिका में उनकी माँग थी। परन्तु उन्हें बहुत परिश्रम करना पड़ता था। उन्हें दूर-दूर तक यात्रा करनी पड़ती थी और कभी-कभी एक ही दिन में बहुत-से भाषण देने पड़ते थे। वे अक्सर बहुत क्लान्त हो जाया करते थे। कभी-कभी तो उनका मस्तिष्क भी थक जाता और वे समझ न पाते कि आगामी दिन के भाषण में वे क्या बोलेंगे। तब एक विचित्र घटना घटती। वे जब रात्रि में बिस्तर पर सोये रहते तो उन्हें एक आवाज़ सुनाई देती जो उनसे बातचीत करती अथवा भाषण देती। इस तरह से उन्हें नये-नये विचार प्राप्त हुआ करते।

हाँ, वह सचमुच बड़ा कठिन काम था। तब भी उन्होंने यात्राएँ जारी रखीं और करीब एक वर्ष तक भाषण भी देते रहे। जहाँ भी वे जाते वहीं भारी उत्साह देखा जाता और अख़बारों में उनके विषय में बड़े-बड़े लेख भी लिखे जाते। एक बार किसी पश्चिमी नगर में कुछ 'काऊ ब्वॉय' (Cowboys) के मध्य उन्होंने भाषण दिया। उन लोगों ने स्वामीजी को

यह कहते सुना कि आध्यात्मिक पुरुष पर आसपास की घटनाओं का कोई असर नहीं पड़ता। उन्होंने स्वामीजी की परीक्षा लेने की ठानी। स्वामीजी खुली जगह में; एक उल्टे टब पर खड़े होकर भाषण कर रहे थे। अकस्मात् एक जोरदार आवाज़ सुनाई पड़ी। वे लोग बन्दूकें चला रहे थे और गोलियाँ स्वामीजी के कान के पास से होकर निकल रही थीं। वे लोग स्वामीजी की परीक्षा ले रहे थे। परन्तु स्वामीजी ने उन गोलियों की परवाह किये बगैर अपना भाषण जारी रखा। बाद में वे लोग स्वामीजी के पास आये और कहने लगे 'ठीक और पक्का आदमी है।'

१८९४ के अन्त में स्वामीजी को लगा कि उन्होंने पर्याप्त यात्राएँ कर ली हैं। उन्होंने निश्चय किया कि अब वे एक ही स्थान पर रहेंगे और अपना कार्य आगे बढ़ाने के लिए कुछ शिष्यों को प्रशिक्षित करेंगे। वे न्यूयार्क में रहने लगे और धारावाहिक रूप से भाषण देने लगे। निष्ठावान लोगों का एक दल उनके गिर्द जमा होने लगा और उनसे शिक्षा ग्रहण करने लगा। यहाँ का उनका काम इतना सफल हुआ कि उन्होंने वहीं एक वेदान्त सोसायटी की स्थापना कर डाली। उन्होंने वहाँ कक्षाएँ लेनी शुरू की और वक्तृताओं के माध्यम से उनसे कहा कि सभी में ईश्वर की सत्ता विद्यमान है। यदि मनुष्य प्रार्थना और ध्यान करे तो ईश्वर का दर्शन प्राप्त कर सकता है। उन्होंने उन लोगों को प्रार्थना और ध्यान करने की विधि भी सिखायी। उन्होंने उन लोगों को यह भी शिक्षा दी कि सभी धर्म सच्चे हैं। लोग उनसे सलाह माँगने आया करते थे और उनमें से कुछ उनके शिष्य भी बने। उनमें से कुछ तो बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति भी थे।

१३
सहस्र द्वीपोद्यान में

सेण्ट लॉरेन्स नदी न्यूयॉर्क शहर की सीमा बनाती है। वहाँ एक स्थान पर इतने सारे द्वीप विद्यमान हैं कि उन्हें सहस्रद्वीप कहा जाता है।

जून, १८९५ के आरम्भ में स्वामीजी सहस्रद्वीपोद्यान (Thousand Island Park) गये और वहाँ सात सप्ताह तक वास किया। उनके बारह शिष्यगण विभिन्न कालों में वहाँ गये और उनके साथ रहे। वह एक बहुत ही सुन्दर स्थान था। वहाँ से उन्हें नदी दिखाई पड़ती थी और अनेकों द्वीप दृष्टिगोचर होते थे। वह बहुत ही शान्त स्थान था, जहाँ हवा और पक्षियों के गीतों के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार की आवाज़ नहीं सुनाई देती थी। परन्तु शिष्यों के लिए सबसे उत्तम बात यह थी कि वे स्वामीजी के उपदेशों को सुना करते थे। स्वामीजी यहाँ अपनी सर्वोत्कृष्ट अवस्था में थे। हर सन्ध्या समय वे अपने छात्रों को वेदान्त* तथा हिन्दूधर्म के विषय में शिक्षा प्रदान किया करते थे।

एक बार वे उन लोगों के साथ देर रात तक बोलते रहे। कब पूर्ण चन्द्रोदय हुआ और उसका अस्त हो गया, उनमें से किसी को भी भान न हुआ कि इतना समय बीत गया है।

वे लोग हमेशा धर्म-सम्बन्धी चर्चा ही नहीं करते थे। वे लोग खूब आनन्द और हँसी-मजाक भी किया करते थे। स्वामीजी चुटकुले सुनाकर उन्हें बहुत हँसाया करते थे। कभी-कभी वे लोग पिकनिक के लिए भी जाया करते। अवसर मिलते ही स्वामीजी उन लोगों के लिए भोजन पकाते थे। शिष्यों के लिए यह भय पाने का समय होता क्योंकि भोजनोपरान्त बहुत-से बरतनों को माँजना जो पड़ता था। और वे मसाले तथा मिर्च डालकर भोजन खूब तीखा बनाते थे। भक्त लोगों को उनके हाथों का भोजन रुचिकर लगता। केवल मसालों के कारण उनकी जीभ जल जाया करती थी। परन्तु फिर भी भोजन करने की मात्रा में कमी न आती थी क्योंकि वह भोजन स्वामीजी के द्वारा पकाया जाता था।

स्वामीजी आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न थे और वे अपने भक्तों पर बहुत प्रभाव डालते थे। वे सभी स्वामीजी के शिष्य बन गये। उनमें

* वेदान्त वेदों पर आधारित होता है तथा उनमें भारतीय सन्तों और ऋषियों की आध्यात्मिक शिक्षाओं का वर्णन आता है)

से दो शिष्यों ने स्वामीजी की बड़ी निष्ठा के साथ आजीवन सेवा की। एक थीं भगिनी क्रिस्टीन, जिन्होंने बाद में भारत आकर सेवा कार्य किया था। दूसरे थे श्री जे.जे. गुडविन, जो स्वामीजी के भाषणों को लिपिबद्ध करते थे और जो स्वामीजी के साथ भारत आये थे। उनकी मृत्यु भी काफी छोटी उम्र में भारत में ही हुई। स्वामीजी की एक अन्य शिष्या सुश्री वाल्डो ने सहस्र द्वीपोद्यान में स्वामीजी द्वारा दिये गये भाषणों को लिपिबद्ध किया था। इनका संकलन 'देववाणी' (Inspired Talks) नामक पुस्तक में हुआ है। इसी दौरान स्वामीजी ने 'संन्यास गीति' (Song of the Sannyasin) नामक कविता भी लिखी थी। सहस्र द्वीपोद्यान छोड़ने के बाद स्वामीजी दो माह के लिए इंग्लैण्ड गये। उसके पश्चात् वे न्यूयॉर्क चले आए क्योंकि यहाँ कार्य चलाने हेतु उनकी उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक थी। पहले की ही तरह, वे वक्तृताएँ देने लगे और जो लोग उनसे आध्यात्मिक सहायता चाहते थे, उन्हें सलाह दिया करते। उनके भाषणों से तीन पुस्तकें छापी गयीं — "ज्ञानयोग", "राजयोग" और "कर्मयोग"। ये पुस्तकें तत्काल प्रसिद्ध हो गयीं। आध्यात्मिक आचार्य के रूप में स्वामीजी की कीर्ति चारों ओर फैल गयी और बहुत-से गणमान्य व्यक्ति उनके मित्र तथा शिष्य बन गये। भारत और अमेरिका, प्राच्य एवं पाश्चात्य, के उत्तम गुणों का समन्वय करने का उनका स्वप्न था। वे चाहते थे कि भारत से आध्यात्मिक व्यक्ति पाश्चात्य जाकर आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करें तथा पश्चिम से लोग भारत में आकर उन्हें विज्ञान, उद्योग, संघटन तथा सहकारिता का पाठ पढ़ाएँ।

अमेरिका में अपना कार्य समाप्त कर स्वामीजी बेहद थक गये थे। उन्होंने अपने आपको पूरी तरह कार्य में लगा दिया था। जब भी वे कुछ कार्य करते वे अन्य किसी बात की चिन्ता न करते। स्वामीजी का शरीर बहुत शक्तिशाली था, परन्तु उन्होंने इतना कठोर परिश्रम किया कि उनका कठोर शरीर भी शिथिल हो गया।

१४
इंग्लैण्ड और यूरोप में

जैसा कि हमने ऊपर कहा है, स्वामीजी सितम्बर १८९५ को पहली बार इंग्लैण्ड गये थे। वहाँ उनके मित्रों, सुश्री हेन्रियेटा मूलर और ई.टी. स्टर्डी ने उनका स्वागत किया। कुछ दिनों के पश्चात् वे सन्ध्या के समय छोटी कक्षाएँ लेने लगे। दिन के वक़्त वे लन्दन के महत्वपूर्ण स्थानों को देखने जाया करते। शीघ्र ही वे प्रसिद्ध हो गये, और उनकी कक्षाएँ धीरे-धीरे बड़ी होने लगीं। बहुत-से लोग उनसे मिलने जाते और समाचार पत्रों में उनके भाषणों का ब्योरा छापा जाता। इस प्रकार इंग्लैण्ड में भी उनका कार्य बहुत सफल हुआ।

लेकिन स्वामीजी वहाँ ज्यादा दिन रह न सके और उन्हें अमेरिका में कार्य को बढ़ाने हेतु वहाँ जाना पड़ा। दूसरी बार १५ अप्रैल, १८९६ को वे इंग्लैण्ड जाने हेतु जहाज द्वारा रवाना हुए। इंग्लैण्ड पहुँचकर वे बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि उनके गुरुभ्राता, स्वामी सारदानन्द, वहाँ पर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वह एक आनन्दपूर्ण अवसर था। उन्होंने कई वर्षों से अपने गुरुभ्राताओं को देखा न था और बातें करने के लिए कितना कुछ था। भारत के विषय में स्वामीजी की बहुत-सी योजनाएँ थीं, जिनके बारे में उन्होंने स्वामी सारदानन्द को बताया।

पुनः स्वामीजी ने कक्षाएँ शुरू कीं तथा वेदान्त पर वक्तृताएँ देना आरम्भ किया। इस बार उनका कार्य ज्यादा सफल साबित हुआ और उन्हें अनेक स्थानों में भाषण देने हेतु जाना पड़ता। प्रोफेसर मैक्स मूलर से भेंट कर वे विशेष रूप से आनन्दित हुए। प्रोफेसर तब ऑक्स्फोर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ाते थे। भारत, हिन्दूधर्म और संस्कृत के वे एक उत्कृष्ट छात्र थे। वे आपस में घण्टों बातें किया करते। स्वामीजी और प्रोफेसर मैक्स मूलर घनिष्ठ मित्र बन गये और अक्सर आपस में पत्र लिखा करते। प्रोफेसर ने श्रीरामकृष्ण पर पहले ही एक लेख लिखा था। अब स्वामीजी से उन्होंने

और अधिक जानकारी चाही। स्वामीजी ने स्वामी सारदानन्द से प्रोफेसर मैक्स मूलर की सहायता करने को कहा। भारत से उपयुक्त सामग्री मँगायी गयी जिसके फलस्वरूप मैक्स मूलर ने श्रीरामकृष्ण पर एक पुस्तक लिखी। यह एक महान् पुस्तक हुई, जिसने स्वामीजी को उनके कार्य में काफी सहायता की।

इंग्लैण्ड में स्वामी विवेकानन्द के अनेक मित्र और शिष्य हुए। उनमें से सबसे उत्कृष्ट हुईं सुश्री मार्गरेट नोबल, जो परवर्ती काल में प्रसिद्ध भगिनी निवेदिता हुईं। दो अन्य निष्ठावान शिष्य हुए, श्री एवं श्रीमती सेवियर दम्पति। वे स्वामीजी के साथ भारत आये और वहाँ उनके कार्यों में उनकी बहुत मदद की।

कुछ दिनों के पश्चात् स्वामीजी के तीन मित्रों ने उन्हें यूरोप की यात्रा के लिए निमन्त्रित किया। स्वामीजी ने खुशी-खुशी उसे स्वीकार कर लिया। सर्वप्रथम वे स्विट्ज़रलैण्ड गये, जहाँ स्वामीजी पहाड़ और बर्फ से आच्छादित आल्प्स पर्वत-चोटियों को देख बहुत आनन्दित हुए। प्राकृतिक सौन्दर्य बहुत ही मनोरम था। एक छोटे-से गाँव में वे लोग दो सप्ताह रहे और वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य, नीरवता तथा शान्ति का आनन्द लिया। स्वामीजी वहाँ पुनः पहलेवाले शान्त, ध्यानस्थ संन्यासी बन गये। उनका स्वास्थ्य भी सुधर गया। वे अक्सर टहलने जाया करते। एक बार तो वे एक दुर्घटना से बाल-बाल बच निकले। वे अपने मित्रों के साथ पहाड़ी रास्ते पर चले जा रहे थे। वे उपनिषदों के मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे और आध्यात्मिक विचारों में डूब गये थे। वे अन्य लोगों से पीछे रह गये थे और उन्होंने इसपर ध्यान ही नहीं दिया कि वे कहाँ जा रहे हैं। बर्फ होने की वजह से उन्होंने अपने पास एक छड़ी रखी थी और हर कदम पर वे उसे गाड़ते हुए चल रहे थे। अचानक, बर्फ के भीतर फँसकर छड़ी टूट गयी, और एक गहरी खाई उनके सामने दिखाई पड़ी। वे उसमें गिर ही जाते, परन्तु किसी तरह सन्तुलन बना लिया। वे शीघ्रतापूर्वक अपने मित्रों के पास गये और कहा, "मैं ईश्वर की कृपा से बच गया।" उसके बाद से उनके मित्र उन्हें अकेला चलने न देते थे।

तत्पश्चात् स्वामीजी जर्मनी गये, जहाँ संस्कृत के महान् विद्वान प्रोफेसर पॉल डॉयसन से मिलकर वे अत्यन्त आनन्दित हुए। उन दोनों में बड़ी देर तक चर्चा होती रही और वे साथ-साथ कई स्थानों में भ्रमण करने भी गये। जब स्वामीजी और उनके मित्रों का दल लन्दन गया तो प्रोफेसर डॉयसन भी उनके साथ हो लिये। स्वामीजी पुनः कर्मक्षेत्र में कूद पड़े, और उनका लोगों से मिलना तथा भाषण देना पुनः आरम्भ हो गया। उन्होंने स्वामी सारदानन्द को अमेरिका के कार्य हेतु अमेरिका भेज दिया और भारत से अपने एक अन्य गुरुभ्राता, स्वामी अभेदानन्द को इंग्लैण्ड बुलवा लिया। स्वामी अभेदानन्द आये और जनसभाओं में भाषण देने लगे। स्वामीजी इन दोनों की सफलता देखकर बहुत खुश हुए।

१५

शूरवीर की वापसी

स्वामी विवेकानन्द जानते थे कि स्वामी अभेदानन्द सफलतापूर्वक वहाँ का कार्यभार सम्भाल लेंगे, इसलिए वे भारत वापस लौट आने की सोचने लगे। यह तय किया गया कि वे नेपल्स से अपनी जहाज-यात्रा करेंगे। श्री गुडविन तथा श्री और श्रीमती सेवियर दम्पति का उनके साथ जाने का कार्यक्रम बना। जाने के पहले, उनके एक अंग्रेज मित्र ने उनसे पूछा, "स्वामीजी, चार वर्षों तक ऐश्वर्यसम्पन्न, भव्य और शक्तिशाली पाश्चात्य देश को देखने के पश्चात् आपको अपनी मातृभूमि कैसी लगेगी?"

स्वामीजी ने उत्तर दिया, "यहाँ आने के पहले मैं अपनी मातृभूमि से प्यार करता था। अब तो भारतवर्ष की धूल तक मेरे लिए पवित्र हो गयी है; वह मेरे लिए एक पवित्र भूमि हो गयी है — भारतवर्ष मेरे लिए महान् तीर्थ बन गया है।"

स्वामीजी की घर वापसी एक महान् घटना थी। धर्म महासभा के समय से ही भारत के लोग स्वामीजी के प्रशंसक बन गये थे और

उनकी श्रद्धा करने लगे थे। अख़बारों में अक्सर उनका नाम पाया जाता था। लोगों के होठों पर उनका नाम बस गया था और वे उनके नायक बन गये थे। इसके पहले, भारत के लोग अपने आपको कमज़ोर और असहाय समझते थे। अब वे अपने को शक्तिशाली अनुभव करने लगे। पाश्चात्य देशों में स्वामीजी की सफलता से उनमें आत्मश्रद्धा जाग उठी थी। इसीलिए, जब वे आये, तो पूरा देश उनके सम्मान में उठ खड़ा हुआ।

१५ जनवरी, १८९७ को जहाज श्रीलंका पहुँचा। स्वामीजी भी आनन्द से अभिभूत हो गये। यह उनका भारत है ! फिर एक बार वे

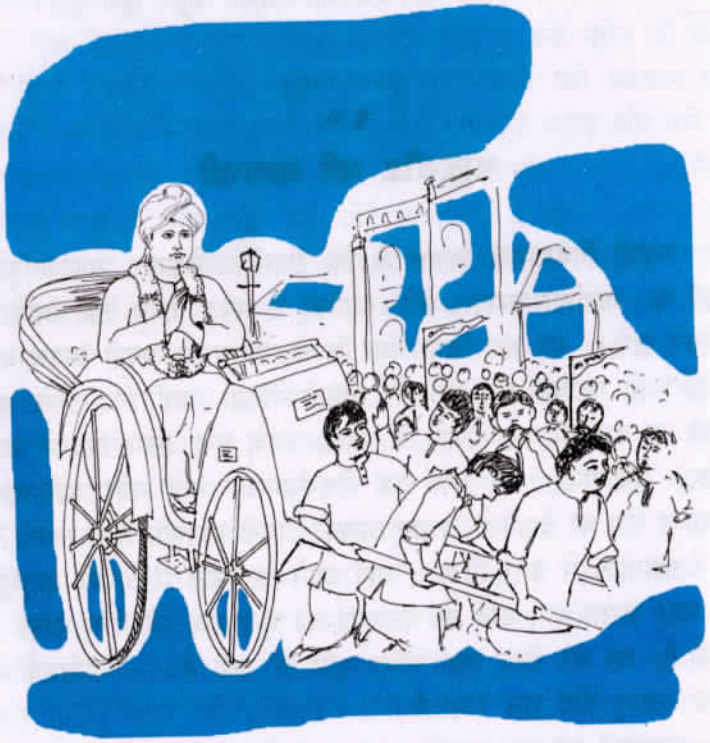

गाड़ी से घोड़ों को खोलकर राजा ने स्वयं और अन्य लोगों ने स्वामीजी की गाड़ी को सड़कों पर खींचा।

अपनी पवित्र मातृभूमि पर चलेंगे ! वे उनके स्वागत में होनेवाले भव्य समारोह के विषय में सर्वथा अनभिज्ञ थे। बड़े-बड़े शहरों में स्वागत समितियाँ बनाई गयीं और अख़बारों में उनके विषय में सम्पादकीय लिखे गये। उनके एक संन्यासी गुरुभ्राता उनका स्वागत करने श्रीलंका चले आये थे। अन्य या तो मार्ग में थे अथवा मद्रास आ गये थे। जब उन्होंने श्रीलंका की भूमि पर कदम रखा, तो उन्होंने पाया कि एक विशाल जनसमुदाय उन्हें देखने के लिए खड़ा है। जो नज़दीक थे, वे उनका चरणस्पर्श करने हेतु दौड़ पड़े। उसके बाद एक बड़ा जुलूस बनाया गया। गीत गाये गये और बहुतों ने स्वामीजी के मार्ग पर पुष्प बिखेरे। कुछ दिनों तक स्वामीजी ने श्रीलंका में निवास किया। वहाँ उन्होंने भाषण दिये और अतिथियों से भेंट की, जिनमें दरिद्र, धनी तथा शक्तिशाली, सभी लोग विद्यमान थे। वे स्टीमर द्वारा श्रीलंका से मद्रास जानेवाले थे, परन्तु विभिन्न शहरों से बहुत-से तार आने लगे यह प्रार्थना करते हुए कि वे कम-से-कम कुछ मिनटों के लिए ही सही वहाँ रुककर दर्शन दें। उन्होंने अपनी योजना बदली और थलमार्ग से गाड़ी या घोड़ा-गाड़ी द्वारा यात्राएँ कीं। उन्होंने हर नगर में लोगों को उनके स्वागत में खड़े पाया। कई स्थानों पर विजयी-तोरणें निर्मित की गयी थीं और बड़े-बड़े जुलूसों का आयोजन किया गया था जिनमें नगाड़े, पटाखे, तोपें और रॉकेट भी सम्मिलित थे। उनके सम्मान में स्वागत भाषण दिये गये और प्रत्युत्तर में उन्होंने भी छोटे-छोटे भाषण दिये।

उन्होंने स्टीमर से समुद्र पार किया और पाम्बन पर उतरकर भारत के मुख्य भूभाग पर पहुँचे। यहाँ रामनाद के राजा और अन्यान्य लोग स्वामीजी से मिले और इन सभी ने उनका हर्षपूर्वक स्वागत किया। गाड़ी से घोड़ों को खोलकर राजा ने स्वयं और अन्य लोगों ने स्वामीजी की गाड़ी को सड़कों पर खींचा। दूसरे दिन स्वामीजी ने रामेश्वरम् मन्दिर के दर्शन किये। यहाँ पहुँचकर उन्हें अपने परिव्राजक जीवन का स्मरण हो आया जब चार वर्ष पूर्व वे इस स्थान पर आये थे। पर कितना अन्तर था ! तब वे एक अनजान संन्यासी की हैसियत से पैदल ही भारत-भ्रमण पर आये

थे। अब वे एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे, और बड़े-बड़े लोगों में भी उनका सर्वप्रथम सम्मान करने की मानो होड़-सी लगी हुई थी।

इस तरह स्वामीजी की यह विजय यात्रा जारी रही। स्वामीजी एक शहर से होते हुए दूसरे शहर जा रहे थे — रामनाद, मद्रास, कुम्भकोणम्, और कई अन्य स्थान। हर जगह स्वामीजी के दर्शन करने, उन्हें देखने और सुनने के लिए भारी भीड़ उमड़ पड़ती। मद्रास पहुँचने पर तो इसकी पराकाष्ठा ही हो गयी। उनके स्वागत में सत्रह स्वागत-द्वारों का निर्माण हुआ था। अनेक दलों ने उन्हें अभिनन्दन-पत्र भेंट किये। स्वामीजी नौ दिनों तक मद्रास में रहे। उन्होंने कई महत्वपूर्ण भाषण दिये और अनेक लोगों से भेंट की।

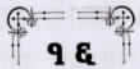

१६

कोलकाता की ओर

लगातार यात्राएँ करने, भाषण देने और लोगों से मिलने-जुलने के फलस्वरूप स्वामीजी बहुत थक गये थे। इस तरह से लगातार परिश्रम करना सम्भव न था। अत: उन्होंने जहाज से कोलकाता जाने का निश्चय किया। अपने कुछ मित्रों और शिष्यों को लेकर वे जहाज से चल पड़े। स्टीमर खिदिरपुर पर आकर लगा और स्वामीजी को एक विशेष रेलगाड़ी द्वारा सियालदह स्टेशन ले जाया गया। स्टेशन पर हजारों लोग उनके स्वागत में खड़े थे जिनमें उनके गुरुभ्रातागण भी विद्यमान थे। स्वामीजी को अनेक फूल और फूलमालाएँ प्रदान की गयीं। वहाँ इतने लोग उपस्थित थे कि स्वामीजी का घोड़ा-गाड़ी तक पहुँचना ही मुश्किल हो गया। कॉलेज-छात्रों के एक दल ने गाड़ी से घोड़ों को खोलकर उसे स्वयं खींचा। एक बहुत बड़ा जुलूस बैण्ड-बाजे, गीत-संगीत, तोरण और फूलों से सुसज्जित होकर चल पड़ा। रास्ते में हजारों लोग स्वामीजी को देखने के लिए एक कतार में खड़े थे।

रात को स्वामीजी आलमबाज़ार मठ में अपने गुरुभ्राताओं के साथ रहते। दिन के समय वे काशीपुर में श्री सील के एक विशाल उद्यान-भवन में रहा करते। दिनभर में सैकड़ों लोग वहाँ जाते और उनसे वेदान्त के विषय में सुनते एवं भारत को किस तरह एक शक्तिशाली देश बनाया जाए, इसपर चर्चा होती। एक सप्ताह बाद उनके स्वागतार्थ एक विशाल जनसभा का आयोजन किया गया। बहुत बड़ी संख्या में गणमान्य श्रोतागण स्वामीजी को सुनने के लिए उसमें सम्मिलित हुए थे। उन्होंने वहाँ पर अपना प्रसिद्ध भाषण दिया था। कोलकाता में अपने निवासकाल में उन्होंने और भी कई वक्तृताएँ दीं।

कुछ दिनों बाद स्वामीजी दक्षिणेश्वर गये। बहुत-से भक्तगण भी वहाँ उपस्थित थे। स्वामीजी वहाँ विभिन्न स्थलों पर गये, और उन्हें पुरानी घटनाओं का स्मरण हो आया, जब वहाँ श्रीरामकृष्ण रहा करते थे। श्रीरामकृष्ण के अन्य भक्तगण वहाँ आये थे और उन सबसे मिलकर उन्हें अपार आनन्द हुआ।

आलमबाज़ार मठ में अपने संन्यासी गुरुभ्राताओं से मिलकर स्वामीजी विशेषरूप से आनन्दित हुए। उन्हें आपस में न जाने कितनी बातें करनी थीं। स्वामीजी ने उन्हें भारत के पुनर्निर्माण के विषय में अपने विचारों से अवगत कराया। उन्होंने यह भी बताया कि संन्यासी लोगों को किस प्रकार दूसरों की सेवा करनी चाहिए। पहले-पहल तो उनके गुरुभ्रातागण उनके विचारों से सहमत नहीं हुए। उनकी धारणा थी कि एक संन्यासी के लिए प्रार्थना, ध्यान और ईश्वर के दर्शन के अतिरिक्त कुछ भी करना अभीष्ट नहीं है। वे यह सोच ही न सके कि संन्यासी को दूसरों के लिए कार्य करना चाहिए अथवा स्कूल और अस्पताल चलाने चाहिए। परन्तु स्वामीजी ने उन्हें समझा दिया कि दोनों विचार ही उपयुक्त हैं। उन्होंने कहा कि वे ऐसे संन्यासियों का एक संघ शुरू करना चाहते हैं जो अपना जीवन दूसरों की मदद और सेवा करने में व्यतीत करेंगे। गुरुभ्राताओं ने स्वामीजी के विचारों को सुना और स्वीकार किया। उसके पश्चात् स्वामीजी ने अपने गुरुभ्राता स्वामी रामकृष्णानन्द को मद्रास में कार्य करने के लिए भेजा। स्वामी

सारदानन्द और स्वामी अभेदानन्द स्वामीजी की इच्छानुसार पश्चिम देशों में कार्यरत थे। उसके बाद स्वामीजी के एक अन्य गुरुभ्राता स्वामी अखण्डानन्द मुर्शिदाबाद के गाँवों में अकाल-पीड़ितों के मध्य राहत-कार्य शुरू करने हेतु गये। अन्य साधुगण भी इसी तरह के कार्य करने हेतु तत्पर थे।

स्वामीजी चाहते थे कि श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्य और गृही भक्तगण साथ मिलकर कार्य करें। इसलिए, उन्होंने १ मई, १८९७ को वरिष्ठ संन्यासियों और भक्तों को बुलाकर एक सभा करवायी। सबने इस विषय पर चर्चा की और एक संघ की स्थापना करने का निश्चय किया, जो अब रामकृष्ण मिशन के नाम से जानी जाती है। इस मिशन का उद्देश्य मनुष्यों को शिक्षक के रूप में प्रशिक्षित करना, कला, शिल्पविद्या एवं उद्योग को प्रोत्साहन देना, और लोगों में धार्मिक विचारों को प्रसारित करना था। मिशन का उद्देश्य देश के विभिन्न भागों में मठ शुरू करना तथा धर्म-प्रचारकों को विदेशों में भेजना भी था।

१७

कोलकाता और उत्तर भारत

स्वामीजी कोलकाता में फरवरी से मई तक रहे। जैसा हमने कहा है, उनसे चर्चा करने बहुत-से लोग आया करते थे। स्वामीजी की रुचि शिक्षित अविवाहित युवकों के प्रति बहुत होती थी और वे लोग भी उनके पास बहुतायत में आया करते थे। उनमें से कुछ युवक रामकृष्ण संघ के सदस्य बने और स्वामीजी के शिष्य भी। बहुत-से लोगों को स्वामीजी ने सहायता प्रदान की। वे लोग बेहतर, सतेज, शक्तिशाली और धार्मिक बने।

मई १८९७ से जनवरी १८९८ तक स्वामीजी ने उत्तर भारत के बड़े-बड़े शहरों की यात्रा की। हर जगह लोगों ने उनका बड़े स्नेह और

उत्साह से स्वागत किया। उन्होंने बहुत-से भाषण दिये, लोगों से चर्चाएँ कीं तथा विभिन्न तरीकों से अपना सन्देश उनतक पहुँचाया।

श्रीलंका से अल्मोड़ा तक जहाँ कहीं भी स्वामीजी गये, उन्होंने अपना सन्देश भारत की जनता तक पहुँचाया। उन्होंने उन सबको प्राचीन भारत की गरिमामय महिमा समझायी। स्वामीजी ने उनसे कहा कि तुम लोगों को तुम्हारे पूर्वजों पर गर्व होना चाहिए, जिन्होंने एक ऐसी सभ्यता का निर्माण किया था जिसकी तुलना विश्व की किसी भी सभ्यता से की जा सकती है। तुम्हें क्यों विदेशों के पराभिमुख होना चाहिए? तुम लोगों को अपने भूतकाल की ओर देखना चाहिए और फिर एक नये और महान् भारत को गढ़ना चाहिए। हमारी प्राचीन धरोहर धर्म ही था। इसलिए, नये भारत को धर्म का आधार लेकर ही गढ़ना पड़ेगा। लोगों को शक्ति की आवश्यकता है। उन लोगों को मज़बूत शरीर, शक्तिशाली मस्तिष्क और दृढ़ चरित्र की आवश्यकता है। बच्चे खेल खेलें और अपनी स्नायुओं को शक्तिशाली बनाएँ। सभी साहस, शक्ति और आत्मश्रद्धा-सम्पन्न हों तथा सत्य, त्याग और सेवा के राष्ट्रीय आदर्शों को आधार बनाएँ। भारतमाता का भविष्य उसके नागरिकों पर ही निर्भर करता है। यदि भारतवासी शक्तिसम्पन्न बनेंगे, तो वे सभी दृष्टि में महान् और शक्तिशाली भारत का निर्माण कर सकेंगे। ऐसा करने में शिक्षा ही हेतु हो सकती है। भारतवर्ष के सभी लोगों को अच्छी शिक्षा देना आवश्यक है। तभी वे लोग शक्तिसम्पन्न हो सकेंगे और भारतवर्ष को महान् बना सकेंगे।

बहुत-से लोगों ने स्वामीजी के सन्देश को सुना और उससे प्रेरित हुए और इससे उन लोगों का आत्मविश्वास पुनः लौट आया। वे लोग दरिद्र और असहायों की सेवा में लग गये। उन्होंने अपना जीवन मातृभूमि की सेवा में बलिदान कर दिया। भारत के इतिहास में यह एक परिवर्तन का दौर था। नये समय का उदय हो चुका था, और भारतवर्ष पचास वर्षों में आज़ाद होने वाला था।

१८

स्वामीजी और उनके शिष्य

जनवरी १८९८ को स्वामी विवेकानन्द कोलकाता वापस लौट आये। पहले की तरह वे हमेशा लोगों से मिलने एवं चर्चा करने में व्यस्त हो गये तथा संघ के साधुओं को प्रशिक्षित करने में लग गये। मठ को शीघ्र ही बेलूड़ में गंगा के पश्चिमी तट पर नीलाम्बर मुखर्जी के उद्यान-भवन में स्थानान्तरित

इसी समय मार्गरेट नोबल ब्रह्मचर्य-दीक्षा में दीक्षित हुई थीं और उन्हें 'निवेदिता' नाम दिया गया था।

किया गया। बेलूड़ में एक भूमिखण्ड भी खरीद लिया गया, जहाँ स्वामीजी एक स्थायी मठ का निर्माण करना चाहते थे। उस भूमि पर एक छोटा-सा मकान था जिसमें स्वामीजी की पश्चिम से आयी कुछ शिष्याएँ चन्द दिनों के लिए रहीं। मार्गरेट नोबल उनमें से एक थीं। इसी समय वे ब्रह्मचर्य-दीक्षा में दीक्षित हुई थीं और उन्हें 'निवेदिता' नाम दिया गया था।

स्वामीजी ने अपनी पश्चिमी शिष्याओं के साथ बहुत-सा समय व्यतीत किया। वे प्रतिदिन उनके पास जाते और बातचीत करते। स्वामीजी ने उन्हें भारत और वेदान्त के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें बतायीं। स्वामीजी चाहते थे कि वे सभी भारतवर्ष को अच्छी तरह से समझें। इसलिए वे

इन कैम्पों में प्लेग से पीड़ित लोगों की चिकित्सा होने लगी।

उनसे भारत के इतिहास की चर्चा करते, यहाँ के लोगों के श्रद्धा-विश्वास के बारे में उन्हें बताते, उनके रहन-सहन और रीति-रिवाजों से उनका परिचय करवाते, हिन्दूधर्म और अन्यान्य विषयों पर विशद चर्चा किया करते। यह सब उन लोगों के लिए नयी बातें थी, पर स्वामीजी सबकुछ स्पष्ट रूप से बड़े धैर्यपूर्वक उनको समझाते।

अतिश्रम के कारण स्वामीजी का स्वास्थ्य टूट गया। मार्च १८९८ को वे विश्राम हेतु दार्जिलिंग चले गये। वहाँ वे एक माह तक रहे। उसके बाद, जैसे ही कोलकाता में प्लेग महामारी के प्रकोप की खबर उनके पास आयी, वे उसी समय कोलकाता चले आये और कर्मक्षेत्र में कूद पड़े। लोग भयातुर हो गये थे और कोलकाता से भागे चले जा रहे थे। स्वामीजी ने तुरन्त ही राहत कार्य करने का निश्चय किया। उनके एक गुरुभ्राता ने उनसे प्रश्न किया, "इसके लिए धन कहाँ से आएगा?"

स्वामीजी ने उत्तर दिया, "क्यों? आवश्यकता पड़ने पर हम मठ के लिए खरीदी गई ज़मीन को बेच देंगे। हम संन्यासी हैं। हमें पेड़ के नीचे रहने और भोजन हेतु भिक्षा करने के लिए तैयार रहना चाहिए।"

सौभाग्य से, ज़मीन बेचने की नौबत नहीं आयी। बहुत-से लोगों ने रुपये दिये और स्वामीजी राहत कार्य शुरू करने में समर्थ हो सके। किराये पर एक बड़ी जगह ली गई और वहाँ पर कैम्प लगाया गया। इन कैम्पों में प्लेग से पीड़ित लोगों की चिकित्सा होने लगी। बहुत-से कार्यकर्ता स्वामीजी और उनके शिष्यों की सहायता हेतु सामने आये। उन लोगों ने गलियों और घरों को साफ किया तथा लोगों को समझाया कि उन्हें क्या-क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिये।

इस तरह के कार्य ने लोगों की बड़ी सहायता की और उनका भय दूर हो गया। वे स्वामीजी की पहले से अधिक श्रद्धा करने लगे। उन्होंने स्वामीजी में एक व्यावहारिक वेदान्ती के दर्शन किये। स्वामीजी ने न केवल अति उच्च धार्मिक सत्यों की शिक्षा दी, वरन् सभी लोगों से, यहाँ तक कि अति दरिद्र व्यक्तियों से भी हार्दिक प्रेम किया। उन्होंने उनके दु:ख-दर्दों को दूर करने की चेष्टा की।

१९
हिमालय की ओर

कुछ दिनों पश्चात् प्लेग राहतकार्य समाप्त हो गया और अब भय का भी कोई कारण न था। स्वामीजी अपने कुछ गुरुभ्राताओं और पश्चिमी शिष्यों के संग हिमालय की यात्रा पर निकल पड़े। यह यात्रा बड़ी आनन्ददायक थी। वे लोग पटना, वाराणसी, लखनऊ और अन्यान्य शहरों से होते हुए गुज़रे और स्वामीजी ने उन लोगों को इन शहरों के इतिहास एवं महत्ता से अवगत करवाया। उन्होंने उन लोगों को भारतवासियों के रहन-सहन, धर्म और सभ्यता के बारे में भी बताया।

वे पहले नैनीताल में ठहरे और उसके बाद अल्मोड़ा पहुँचे। सदैव की भाँति, स्वामीजी वहाँ भी अनेक लोगों से मिले और उनसे बातचीत की। स्वामीजी ने अपने पश्चिमी शिष्यों को भी यहाँ भारत के विषय में बहुत-सी बातें बतायीं। भगिनी निवेदिता ने इन वार्तालापों को अपनी एक पुस्तक में संग्रहीत किया है।

एक महीने के बाद, स्वामीजी अपने पश्चिमी शिष्यों के साथ काश्मीर गये। काश्मीर के अधिकांश भाग की यात्रा इन लोगों ने 'हाउसबोट' द्वारा पूरी की। प्राकृतिक दृश्यावली देखकर सभी आनन्दित हुए। स्वामीजी ने उन लोगों को बहुत-सी बातें समझायीं और काश्मीर के इतिहास की जानकारी भी दी।

स्वामीजी इस समय शिव का चिन्तन करते और शिव की ही चर्चा किया करते थे। इसी समय उन्होंने अमरनाथ गुफा की यात्रा करने का निश्चय किया, जो हिमालय के भीतरी भाग में स्थित है और जहाँ शिव की पूजा बर्फ के लिंग के रूप में होती है। भगिनी निवेदिता को उनके साथ जाने की अनुमति मिली। यह एक बड़ी मनोरंजक तीर्थयात्रा थी और रास्ते में उन लोगों को विश्व के सबसे उत्तम प्राकृतिक सौन्दर्य के दर्शन हुए।

उस दल में अनेक लोग थे—भारत के विभिन्न स्थानों से आए हुए स्त्री-पुरुष, बच्चे और अनेक सम्प्रदायों के साधु-संन्यासी भी। रात्रि में जब वे ठहरते तो तम्बुओं का एक नगर-सा निर्मित हो जाता। अनेक संन्यासी स्वामीजी के पास उपदेश ग्रहण करने आते। यात्रा उतनी सरल न थी। उन लोगों को ऊँचे ग्लेशियरों पर चढ़ना पड़ता और एक बार तो उनका कैम्प समुद्र तल से करीब १४,५०० फीट की ऊँचाई पर भी लगा। कहीं-कहीं तो रास्ता गहरी खाई के बिल्कुल निकट था। स्वामीजी तीर्थयात्रा के सभी रस्म-रिवाजों को मानकर चल रहे थे और भयंकर ठण्डक के बावज़ूद उन्होंने विभिन्न जलधाराओं में स्नान किया।

२ अगस्त को वे लोग अमरनाथ पहुँचे। इस समय स्वामीजी को केवल शिव का ही ध्यान था। भक्ति से परिपूर्ण हृदय से स्वामीजी ने गुफा में प्रवेश किया और बर्फ-निर्मित शिवलिंग के सामने साष्टांग प्रणाम किया। गुफा काफी बड़ी थी। बहुत-से भक्तगण वहाँ खड़े होकर शिव की स्तुति में गान कर रहे थे। स्वामीजी को यहाँ एक आध्यात्मिक अनुभूति हुई। शिव ही उनके सर्वस्व थे! शिव संन्यासियों के गुरु हैं! वे शाश्वत सत्य हैं! ...उस समय उनके यही भाव थे। उसके बाद कई दिनों तक स्वामीजी शिव के अतिरिक्त कुछ बोलते ही न थे।

अमरनाथ से स्वामीजी श्रीनगर वापस चले आए जहाँ वे सितम्बर महीने के अन्त तक रहे। यहाँ पर उन्होंने अधिकतर समय केवल ध्यान में बिताया। वे अक्सर अकेले ही किसी एकान्त स्थान में चले जाते और बहुत दिनों तक एकाकी रहा करते। परन्तु जब कभी वे अपने शिष्यों के साथ रहते, तो उन्हें अपने विचारों से मुग्ध किया करते और भारत को ठीक से समझने में उनकी सहायता करते।

श्रीनगर के अपने निवास के दौरान स्वामीजी ईश्वर का ध्यान अधिकतर माँ जगदम्बा के रूप में ही करते। अक्सर उन्हें माँ काली के श्रेष्ठ भक्त रामप्रसाद के गीतों को गाते हुए सुना जाता। कभी-कभी उन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता कि वे माँ भवानी के एक छोटे-से शिशु हैं। उन्हें ऐसा भान होता कि माँ भवानी ही उनके द्वारा सब कार्य करवा रही

हैं। कभी-कभी वे बहुत काल तक माँ के ध्यान में मग्न रहते। वे नौका को किसी एकान्त स्थान में ले जाते और वहाँ माँ काली का ध्यान करते। ऐसा बहुत दिनों तक चलता रहा जब तक उन्हें काली का दर्शन प्राप्त न हो गया। माँ काली ने मानो उनके पूरे दिलो-दिमाग पर अपना अधिकार जमा लिया था। इसी समय उन्होंने माँ काली पर अपनी एक सर्वोत्कृष्ट कविता "माँ काली" (Kali the Mother) लिखी।

उन्हें ऐसा लगा कि माँ ही सब कार्य कर रही हैं और वे उनके हाथ की केवल एक कठपुतली मात्र हैं। भारत के भविष्य की उनकी सारी योजनाएँ न जाने कहाँ तिरोहित हो गईं। अब तो वे केवल एक शिशु मात्र थे, जिसकी अपनी कोई इच्छा ही नहीं रहती और जो केवल माँ पर ही अवलम्बित रहता है।

२०
बेलूड़ मठ में

स्वामी विवेकानन्द को गम्भीर आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त हुईं, परन्तु उनका स्वास्थ्य गिर गया। वह इतना खराब हो गया कि उन्होंने कोलकाता लौटने का निश्चय किया। १८ अक्तूबर को वे मठ में वापस आ गये। उनके गुरुभ्रातागण उन्हें देखकर बहुत खुश हुए, परन्तु उनको अस्वस्थ पाकर निराश भी हुए। स्वामीजी ने संन्यासियों से बहुत बातें कीं और कक्षाएँ भी लीं।

इसी समय स्वामीजी की इच्छाएँ पूर्ण होने लगीं। वे बहुत दिनों से भारत की नारियों की सहायता करना चाहते थे। यद्यपि भारतीय नारियाँ बहुत पवित्र एवं सद्गुण-सम्पन्ना थीं, वे अधिक शिक्षित न थीं तथा बाह्य संसार में अधिक क्रियाशील भी न थीं। स्वामीजी का विचार था कि उन्हें शिक्षा देना आवश्यक है; तब वे स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान कर लेंगी। इसलिए जब भगिनी निवेदिता ने अपना कार्य शुरू किया तो वे

बहुत खुश हुए। वे भारतीय नारियों की सहायता करने भारत आयी थीं और अब उन्होंने लड़कियों के लिए एक स्कूल खोला था। पहले-पहल वे श्री सारदादेवी और श्रीरामकृष्ण की कुछ अन्य भक्त-महिलाओं के साथ रहीं। ये महिलाएँ हिन्दूधर्म के विषय में बहुत-कुछ जानती थीं — जैसे रामायण, महाभारत इत्यादि। भगिनी निवेदिता ने उन लोगों से बहुत-सी चीज़ें सीखीं। स्वामी विवेकानन्द ने भी निवेदिता की सहायता करना जारी रखा और वे उनके स्कूल में भी काफी रुचि रखते थे। बाद में, भगिनी निवेदिता ने एक अलग मकान किराये पर ले लिया। उन्हें बहुत सारी कठिनाइयों को झेलना पड़ा, परन्तु स्कूल शुरू करने में वे सफल रहीं। अब उस स्कूल ने बहुत बड़ा रूप ले लिया है और उसने भारत की नारियों को उन्नत करने में बड़ी भूमिका निभाई है।

स्वामी विवेकानन्द बेलूड़ में एक मठ शीघ्रातिशीघ्र निर्मित करवाना चाहते थे। ज़मीन तो पहले ही खरीदी जा चुकी थी और उसकी पूजा मार्च १८९८ में सम्पन्न हो गयी थी। इसके तुरन्त बाद ही, भवन-निर्माण का कार्य शुरू कर दिया गया। दिसम्बर महीने में स्वामीजी और कुछ संन्यासीगण इस नये मठ में चले आये और शीघ्र ही अन्यान्य सभी साधुगण यहाँ आकर रहने लगे। स्वामीजी की यह दृढ़ धारणा थी कि यह मठ बहुत महान् बनेगा। यह एक ऐसा केन्द्र होगा जहाँ सभी धर्मों और धार्मिक नेताओं का आदर होगा। यहाँ से नवीन विचारों का प्रचार एवं प्रसार होगा और सारे विश्व से लोग यहाँ पर आएँगे।

स्वामीजी के बुलाने पर स्वामी सारदानन्द, जो अमेरिका में कार्यरत थे, शीघ्र ही वापस चले आये। स्वामीजी ने उन्हें इस नये मठ के कार्य को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए कहा और यह कार्य सचमुच सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। आध्यात्मिक चर्चाओं और शास्त्र पठन-पाठन में ही सबका अधिकतर समय व्यतीत होता। नियमों का बड़ी कठोरतापूर्वक पालन किया जाता। स्वामीजी संन्यासियों को भावी प्रचारकों के रूप में प्रशिक्षित करने लगे। अपने शिष्यों को वे भाषण देने हेतु प्रोत्साहित करते। १८९९ के प्रारम्भ में उन्होंने अपने दो शिष्यों को प्रचारार्थ ढाका भेजा तथा इसके

कुछ समय बाद स्वामी सारदानन्द और स्वामी तुरीयानन्द को गुजरात भेजा। वे सभी अपने कार्यों में बहुत सफल हुए।

२१
पाश्चात्य की दूसरी यात्रा

स्वामीजी का स्वास्थ्य ग्रीष्मकाल में बहुत खराब हो गया। डॉक्टरों ने कहा कि यदि वे पाश्चात्य देशों में पुन: जाएँ तो उनका स्वास्थ्य बेहतर हो सकता है। समुद्री-यात्रा उनके लिए लाभकारी होगी। स्वामीजी ने जाने का निश्चय किया। स्वामी तुरीयानन्द और भगिनी निवेदिता का जाना भी तय हुआ।

"गोलकुण्डा" नामक जहाज से उन लोगों ने २० जून १८९९ को अपनी यात्रा शुरू की। मानसून की वजह से समुद्र बहुत उग्र था। जहाज मद्रास में रुका परन्तु कोलकाता में प्लेग महामारी के कारण भारतीय यात्रियों को नीचे उतरने नहीं दिया गया। स्वामीजी के बहुत सारे मित्र छोटी नौकाओं में जहाज के किनारे आए और उनसे बातचीत की। उसके बाद जहाज श्रीलंका में रुका। वहाँ भी बहुत बड़ी भीड़ स्वामीजी को देखने आई थी तथा वे भी उन लोगों से मिले।

यह यात्रा बिल्कुल भी सुविधाजनक नहीं रही क्योंकि जहाज निरन्तर पानी की उफनती तरंगों पर हिचकोले खा रहा था। परन्तु इन सबके बावज़ूद वह एक सुखद समय था क्योंकि स्वामीजी अपने संगियों के साथ बहुत लम्बे समय तक बातचीत कर पा रहे थे। उन्होंने भारत और धर्म-जीवन के बारे में न जाने कितनी अच्छी-अच्छी बातें उन लोगों को बतायीं। इस तरह समय व्यतीत होता गया, और १ जुलाई को जहाज लन्दन पहुँचा। स्वामीजी वहाँ दो सप्ताह तक रहे और फिर अमेरिका के लिए रवाना हो गये। दो अमेरिकी महिलाएँ उनसे मिलने लन्दन तक आयी थीं। वे दोनों भी इस दल के साथ अटलाण्टिक पार करने हेतु संग

ही चल पड़ीं। सभी ने इस यात्रा से बहुत आनन्द प्राप्त किया। दस दिनों के पश्चात् जहाज न्यूयॉर्क पहुँचा। स्वामीजी न्यूयॉर्क में नहीं ठहरे, बल्कि अपने अमेरिकन मित्रों, श्री एवं श्रीमती लेगेट के ग्राम-स्थित घर में चले गये। यह स्थान न्यूयॉर्क से करीब एक सौ पचास मील दूर, कैटस्किल पर्वत के पास, अवस्थित है। यह एक सुन्दर और शान्त जगह थी। स्वामीजी यहाँ नवम्बर माह तक रहे। उन्हें काफी आराम मिला और उनका स्वास्थ्य भी बहुत सुधर गया। वे स्वामी अभेदानन्द से मिलकर भी आनन्दित हुए, जो अमेरिका में कार्यरत थे और न्यूयॉर्क की वेदान्त सोसायटी के अध्यक्ष थे।

उसके पश्चात् स्वामीजी न्यूयॉर्क गये, जहाँ वे अपने कुछ पुराने मित्रों से मिले और कुछ कक्षाएँ भी लीं। वे लोग स्वामीज़ी को पुन: पाकर बहुत खुश हुए। अन्य कुछ लोगों ने उनकी पुस्तकें पढ़ी थीं, और अब उन्हें स्वामीजी को देखने और मिलने क़ा अवसर भी मिला था। दो सप्ताह के बाद स्वामीजी अमेरिका के पश्चिमी तट पर स्थित कैलिफोर्निया शहर गये। पहले वे लॉस एंजेलिस गये। वहाँ बहुत-से लोग उन्हें देखने और सुनने के लिए उत्सुक थे। उन्होंने अख़बारों में उनके विषय में पढ़ा था और उनकी किताबें भी पढ़ी थीं। इसलिए, वहाँ उन्हें अनेक वक्तृताएँ देनी पड़ीं। अपने कुछ भाषणों में उन्होंने रामायण और महाभारत की कहानियाँ भी सुनायीं।

फरवरी में स्वामीजी सेन फ्रांसिस्को गये। यहाँ भी अनेक लोग उन्हें सुनने के लिए एकत्र होते। वे लोग इतने आग्रही हुए कि स्वामीजी को उनके लिए व्यक्तिगत कक्षाएँ लेनी पड़ीं। स्वामीजी ने उन्हें वेदान्त-दर्शन, गीता और ध्यान करने की पद्धति सिखाई। उन्होंने एक बड़ा बंगला किराये पर लिया ताकि वहाँ पर कक्षाएँ ले सकें। उन्होंने कई जनसभाओं को सम्बोधित किया और आसपास के अनेक शहरों में भाषण देने गये। सेन फ्रांसिस्को में इतने लोग उनकी कक्षाओं में आने लगे कि उन्होंने वहाँ एक वेदान्त सोसायटी शुरू कर दी।

एकबार स्वामीजी अमेरिका के एक शहर में नदी के किनारे घूम रहे थे। उन्होंने देखा कि कुछ नवयुवक नदी में बहते हुए कुछ अण्डों के

स्वामीजी ने बन्दूक हाथ में ले ली और करीब एक दर्जन छिलकों को उड़ा दिया।

छिलकों पर बन्दूक से निशाना साध रहे थे। परन्तु उनका निशाना सध नहीं रहा था और वे लोग ठीक निशाना लगाने में असमर्थ हो रहे थे। उनके निशाना न लगा पाने पर स्वामीजी मुस्कुरा दिये। उनकी असमर्थता पर स्वामीजी को इस तरह मुस्कुराते देख वे लोग बड़े खिन्न हुए। उन्होंने स्वामीजी से कहा कि यह काम इतना सरल नहीं है, और उनसे अपना हाथ आज़माने का निमन्त्रण दिया। स्वामीजी ने बन्दूक हाथ में ले ली और करीब एक दर्जन छिलकों को उड़ा दिया। उन नवयुवकों ने सोचा कि स्वामीजी किसी दक्ष तीरंदाज से प्रशिक्षित हुए हैं। परन्तु स्वामीजी ने उन्हें

बताया कि इससे पहले उन्होंने कभी बन्दूक चलाई ही नहीं। उनकी सफलता का रहस्य मन की एकाग्रता मात्र है।

स्वामीजी के एक शिष्य ने उन्हें एक आश्रम निर्माण हेतु कुछ भूमि दान में दी। वह स्थान किसी भी शहर या ग्राम से बहुत दूर पर स्थित था और बहुत शान्त था। बाद में, स्वामी तुरीयानन्द वहाँ पर अपने बारह शिष्यों के साथ गये थे। उस जगह का नाम शान्ति आश्रम रखा गया।

पहले की तरह स्वामीजी ने फिर कठोर परिश्रम किया, और इससे उनका स्वास्थ्य टूट गया। न्यूयॉर्क के श्री एवं श्रीमती लेगेट ने उनके गिरते हुए स्वास्थ्य के विषय में सुना और उनसे पैरिस चलने का अनुरोध किया। धर्म के इतिहास पर एक काँग्रेस में भाग लेने हेतु उन्हें वहाँ आमन्त्रित भी किया गया था। वे कुछ सप्ताह तक न्यूयॉर्क में रहना चाहते थे, इसलिए वे कैलिफोर्निया से रवाना हो पड़े। वह एक लम्बी यात्रा थी और स्वामीजी वहाँ पहुँचने पर बहुत थक गये थे। वहाँ भी उन्होंने कुछ वक्तृताएँ दीं, और अपने पुराने मित्रों से वार्तालाप किया। वेदान्त सोसायटी की प्रगति पर उन्हें काफ़ी प्रसन्नता हुई।

२२
यूरोप की ओर

स्वामीजी न्यूयॉर्क से जहाज द्वारा रवाना होकर १ अगस्त १९०० को पैरिस पहुँचे। श्री एवं श्रीमती लेगेट का एक बहुत सुन्दर बंगला पैरिस में था। स्वामीजी उन लोगों के साथ वहीं ठहरे। वे कई महत्वपूर्ण व्यक्तियों से मिले और उनसे वार्तालाप किया। इस प्रकार वे अपने विचारों को प्रसारित करते गये।

पैरिस में उनके निवास के दौरान सबसे मुख्य घटना थी धर्म के इतिहास पर काँग्रेस का आयोजन। स्वामीजी ने अमेरिका में रहते हुए ही फ्रेंच भाषा सीखनी शुरू कर दी थी। अब वे उस भाषा का निष्ठापूर्वक

अध्ययन करने लगे ताकि काँग्रेस में भाषण दे सकें। वे सफल हुए, और कठिन प्रश्नों को भी फ्रेंच में समझा सके। उनका स्वास्थ्य अच्छा न था, परन्तु फिर भी काँग्रेस के समक्ष वे दो बार बोले। अन्य विद्वानों ने उनके भाषणों को सराहा। वे वहाँ प्रसिद्ध थे और उन्होंने कई महत्वपूर्ण व्यक्तियों से भेंट की। सुप्रसिद्ध एवं महान् विज्ञानविद्, डॉ. जगदीशचन्द्र बोस उस समय पैरिस में ही थे। स्वामीजी उनसे कई बार मिले। वैज्ञानिक आविष्कारों के लिए वे इन भारतीय वैज्ञानिक पर बड़ा गर्व करते थे। उसके पश्चात् उन्होंने यूरोप के अन्य भागों की यात्राएँ की। उन्होंने ऑस्ट्रिया और तुर्की की यात्रा की। वे कुछ दिनों तक कॉन्स्टेन्टिनोपाल (आजकल इस्तान्बुल) में रहे और कुछ रुचिकर स्थानों को देखने गये। उन्होंने कई महत्वपूर्ण व्यक्तियों से भेंट भी की।

उसके बाद वे स्टीमर से ग्रीस (यूनान) गये, जहाँ वे चन्द दिनों तक रहे। उसके बाद वे मिस्र गये। उनके कुछ मित्रगण इन यात्राओं में उनके साथ थे। स्वामीजी कायरो में पिरामिड और संग्रहालय देखने के इच्छुक थे। और साथ ही यह सब देखने के मध्य वे ऊब भी चुके थे। उनका मन ईश्वर में अधिकाधिक लग रहा था, और अब वे जगत् की अन्यान्य चीज़ों को देखने के इच्छुक न थे। वे पुन: भारत वापस आने के लिए व्यग्र हो उठे। एक दिन, उन्होंने अपने मित्रों से कहा कि वे शीघ्र ही भारत की यात्रा करेंगे। वे लोग यह सुनकर उदास हो गये।

२३
भारत वापसी

स्वामीजी भारत जानेवाले प्रथम स्टीमर से ही रवाना हो गये। वे अकेले ही थे। भारत में उन्होंने अपने वापस आने की खबर किसी को नहीं दी थी। जब जहाज भारत पहुँचा तो स्वामीजी की खुशी का ठिकाना न था। ९ दिसम्बर १९०० को स्वामीजी देर रात गये बेलूड़

मठ पहुँचे। कोई भी यह जानता न था कि स्वामीजी आनेवाले हैं। स्वामीजी यूरोपियन वेश-भूषा में थे, और दरबान उन्हें पहचान न पाया। उसने स्वामीजी को भीतर आने से रोका, और अन्य साधुओं के पास दौड़ा गया जो उस समय रात्रि-भोजन कर रहे थे। दरबान ने उन्हें बताया कि एक साहब आये हैं।

साधु लोग यह सुनकर असमंजस में पड़ गये। कौन आया होगा? वह क्या चाहता है? फाटक तक जाने से पहले ही 'साहब' उन लोगों के पास आ गये। जब उन्होंने देखा कि कौन आया है तो वे खुशी से झूम उठे। "स्वामीजी आ गये ! स्वामीजी आ गये !" वे चिल्ला उठे। उन्होंने स्वामीजी के लिए एक आसन बिछा दिया और उन्हें खिचड़ी खाने के लिए दी। स्वामीजी ने बड़े आनन्दपूर्वक उसे खाया, क्योंकि कई महीनों से उन्होंने ऐसा भोजन नहीं खाया था। उसके बाद वे लोग स्वामीजी से घण्टों बातचीत करते रहे और स्वामीजी उन्हें पश्चिम के अपने अनुभव बताते रहे।

परन्तु स्वामीजी के लिए एक दु:खद घटना प्रतीक्षा कर रही थी। उनके सबसे उत्तम पश्चिमी शिष्यों में एक, श्री जे. एच. सेवियर का देहावसान हो गया था। श्री एवं श्रीमती सेवियर ने स्वामीजी के लिए अपना सर्वस्व छोड़ दिया था, और वे दोनों स्वामीजी के साथ पश्चिम की उनकी प्रथम यात्रा की वापसी के समय भारत आए थे। वे स्वामीजी के साथ भारत-भ्रमण पर भी गये थे और हिमालय में रहना शुरू किया था। हिमालय के मायावती स्थान पर उन्होंने एक आश्रम बनाया था। अब श्री सेवियर चल बसे थे। स्वामीजी जानते थे कि श्रीमती सेवियर शोकातुरा होंगी, इसलिए वे कुछ दिनों के लिए मायावती जाना चाहते थे। उन्होंने तार द्वारा तुरन्त समाचार भिजवा दिया कि वे शीघ्र ही मायावती आ रहे हैं।

उस समय शीतकाल का मध्य था। हिमालय पर बड़ी गहरी बर्फ जमी थी और काफी ठण्ड भी थी। यद्यपि मायावती की यात्रा भंयकर कठिन थी, तो भी स्वामीजी ने पीछे नहीं देखा। वे ३ जनवरी १९०१ को मायावती पहुँचे। वहाँ पर रहनेवाले श्रीमती सेवियर और अन्य

साधुगण स्वामीजी को देखकर बहुत खुश हुए। उस समय बड़ी जोरों की ठण्ड पड़ रही थी और जमीन बर्फ से ढकी थी, तो भी स्वामीजी दूर तक घूमने जाते। वहाँ रहनेवाले सभी लोगों से वे बड़ी देर तक बातचीत करते। वहाँ वे दो सप्ताह तक रहे और उसके बाद बेलूड़ मठ लौट आए।

बेलूड़ मठ में स्वामीजी सात सप्ताह तक रहे और तदुपरान्त पूर्वी बंगाल के ढाका शहर गये। उनका स्वास्थ्य प्रतिदिन निरन्तर गिरता ही जा रहा था, और ऐसी आशा की जा रही थी कि यह यात्रा उनके लिए उपकारी सिद्ध होगी। १८ मार्च को अन्यान्य संन्यासियों के साथ वे कोलकाता से रवाना हुए। इस दल में उनकी पूजनीया माँ भी साथ थीं। ढाका में सैकड़ों लोग स्वामीजी को देखने और उन्हें सुनने के लिए एकत्रित हुए। अपने खराब स्वास्थ्य के बावज़ूद स्वामीजी ने दो लम्बे भाषण दिये। उन्होंने कुछ तीर्थ स्थानों के दर्शन किये और गोहाटी में भी ठहरे जहाँ उन्होंने तीन वक्तृताएँ दीं।

स्वामीजी का स्वास्थ्य बुरी तरह टूट चुका था। वे मधुमेह रोग (Diabetes) से पीड़ित थे और ढाका में उनपर दमा का आक्रमण हुआ था। उन्होंने आसाम में शिलांग जाने का निश्चय किया, क्योंकि ऐसा सोचा गया कि वहाँ की शुष्क आबहवा से उन्हें लाभ मिलेगा। वहाँ पर उन्होंने चीफ कमिश्नर श्री हेनरी कॉटन से, जो भारत के मित्र थे, कुछ काल तक वार्तालाप किया। उन्होंने वहाँ एक भाषण भी दिया जिसमें बहुत लोग सम्मिलित हुए थे।

२४

चन्द अन्तिम दिन

मई महीने में स्वामीजी बेलूड़ मठ लौट आये। उनका स्वास्थ्य लगातार गिरते ही जा रहा था। परन्तु वे अनेक लोगों से मिलते, बातें करते और उन्हें आध्यात्मिक सहायता प्रदान किया करते थे। वे

पशुओं से उन्हें विशेष प्यार था।

ब्रह्मचारियों और संन्यासियों के लिए कक्षाएँ लेते थे और अक्सर भजन गाया करते थे। उन्होंने मठ-जीवन के लिए नियम बनाये और वे अच्छे से निरीक्षण भी किया करते कि उनका ठीक से पालन हो रहा है या नहीं। वे सभी को प्रातःकाल शीघ्र उठकर ध्यान करने के लिए कहते। वे स्वयं भी रोज शीघ्र जाग जाते। बेलूड़ मठ में वे कई चीज़ों में रुचि रखते — बगीचा, गो-शाला, रसोई-घर इत्यादि।

पशुओं से उन्हें विशेष प्यार था। उन दिनों मठ में उनकी बहुतायत थी। एक 'बाघा' नाम का कुत्ता था, एक बकरी 'हँसी' नाम की थी और

'मटरू' नाम का एक मेमना था । इसके अलावा गाय, भेड़, कबूतर, बतख, हिरण भी थे । ये सभी पशु स्वामीजी से बहुत स्नेह करते थे और मटरू तो स्वामीजी के पीछे-पीछे ही घूमा करता और कभी-कभी तो उनके कमरे में ही सो जाता था। परन्तु बाघा इन सबका मुखिया था। एक बार बाघा ने कोई अपराध किया तो साधुगण उसे गंगापार छोड़ आये। परन्तु बाघा वापस चला आया। वह नौका में कूद पड़ा और जब नाविक ने उसे भगाना चाहा तो वह उसपर जोरों से भूँकने लगा। इससे नाविक डर गया और उसे नाव में ही रहने दिया। दूसरे दिन सुबह बाघा स्वामीजी के दरवाजे पर पड़ा था। स्वामीजी ने उसे थपथपाया और साधुओं से कह दिया कि बाघा फिर से भगाया न जाये।

अक्तूबर १९०१ को बेलूड़ मठ में दुर्गापूजा का अनुष्ठान किया गया। श्रीरामकृष्ण के सभी भक्तगण उस अवसर पर वहाँ आये थे। यह पूजा बहुत बड़े पैमाने पर की गयी थी और सैकड़ों लोगों को प्रसाद वितरण किया गया था। उसके बाद स्वामीजी ने लक्ष्मीपूजा और कालीपूजा का आयोजन भी किया।

इसके बाद उनकी हालत बहुत नाज़ुक हो गयी। उन्हें कई दिनों तक बिस्तर पर ही पड़े रहना पड़ता था। कुछ दिन आराम करने के बाद उनमें थोड़ा सुधार देखा गया। हालाँकि, पहले की भाँति अब वे कठोर परिश्रम नहीं कर पाते थे।

वर्ष के अन्त में दो जापानी विद्वान स्वामीजी से मिलने मठ में आये। वे उन्हें धर्मसभा में भाषण देने हेतु जापान आमन्त्रित करने आये थे। स्वामीजी वहाँ जाने के इच्छुक थे, परन्तु अपने गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण स्वामीजी ऐसा करने में असमर्थ थे। फिर भी, वे एक जापानी श्री ओकाकुरा के साथ बोधगया और वाराणसी गये थे। वाराणसी में अनेक लोग स्वामीजी से मिलने के लिए आये। भिंगा के राजा ने उन्हें वाराणसी में एक मठ शुरू करने हेतु आवश्यक रुपये दान में दिये। स्वामीजी ने इन रुपयों को स्वीकार किया, और बाद में स्वामी शिवानन्द को वाराणसी में मठ-स्थापना करने के लिए भेजा।

वाराणसी में अनेक नवयुवकों ने स्वामीजी के उपदेशों का अनुसरण करने की चेष्टा की। उन लोगों ने एक मकान किराये पर लिया और दरिद्र एवं रोगियों की सेवा में लग गये जिनका कोई घर या मित्र नहीं था। उन लोगों ने अपनी असुविधा को भूलकर बहुत कठोर परिश्रम किया। स्वामीजी इसे देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्हें इन नवयुवकों पर अपार गर्व हुआ। स्वामीजी को वाराणसी में बड़ा आनन्द आया। यहाँ की जलवायु भी उनके स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छी थी और वे अपने को शक्तिशाली अनुभव करने लगे। लेकिन वे शीघ्र ही बेलूड़ मठ लौट गये।

बेलूड़ मठ में एक बड़ी मजेदार घटना घटी। मठ में एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के नये संस्करण आये थे। उनमें बड़े-बड़े पच्चीस विभिन्न भाग थे। स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें पढ़ना शुरू किया। उनमें एक अद्‌भुत एकाग्रता-शक्ति विद्यमान थी और वे बड़ी शीघ्रता से पढ़ना जानते थे। उन्होंने जल्द ही दस भाग पढ़ डाले और अब ग्यारहवाँ भाग पढ़ना शुरू किया था। इस समय उनका एक शिष्य उनके पास आया। उन्होंने विशालकाय भागों को निहारा और कहा,"सारे जन्म-भर भी यदि कोई इन विशालकाय पुस्तकों को पढ़े तो भी इन्हें समझना कठिन कार्य होगा।"

स्वामीजी ने उत्तर दिया, "वह कैसे? मैंने तो दस भाग पढ़ डाले हैं। तुम उनमें से किसी से कोई भी प्रश्न पूछ सकते हो।"

तब उस शिष्य ने उन भारी-भारी दस पुस्तकों में से कठिनतम प्रश्न स्वामीजी से किये। स्वामीजी ने उन सभी प्रश्नों का सटीक उत्तर दे दिये। कुछों के तो उन्होंने एन्साइक्लोपीडिया की भाषा में ही उत्तर दे दिये।

शिष्य बोला,"यह मानवी क्षमता के बाहर की बात है।" परन्तु स्वामीजी ने कहा कि यह केवल एकाग्रता के कारण ही सम्भव होता है। यदि कोई पवित्र जीवन यापन करे तो ऐसी एकाग्रता हासिल करना सम्भव है।

२५
महानिर्वाण

स्वामी विवेकानन्द के अन्तिम महीने बेलूड़ मठ में ही व्यतीत हुए। जीवन के अन्त काल तक वे लोगों को शिक्षा एवं सहायता प्रदान करते रहे। मानव मात्र के लिए उनके मन में अपार स्नेह था और वे सबकी यथासामर्थ्य मदद करना चाहते थे। वे अपने अन्त के विषय में जान गये थे, और उसकी तैयारी भी कर रहे थे। उन्होंने अपने शिष्यों से बता भी दिया था कि वे ज्यादा दिन जीवित न रह सकेंगे। शिष्यगण इस पर विश्वास नहीं कर पाते थे, क्योंकि स्वामीजी तो आनन्द में ही थे और उनका स्वास्थ्य भी सुधर रहा था। उन सबको ऐसी आशा थी कि वे अधिक वर्षों तक जीवित रहेंगे।

मृत्यु के तीन दिन पूर्व स्वामीजी स्वामी प्रेमानन्द के साथ मठ-प्रांगण में टहल रहे थे। स्वामीजी ने एक विशेष स्थान की ओर इंगित करते हुए कहा, "जब मैं शरीर-त्याग करूँगा, तो उसका संस्कार यहाँ पर करना।" आज उसी स्थान पर स्वामी विवेकानन्द का भव्य मन्दिर विद्यमान है।

उसके बाद आखिरी दिन उपस्थित हुआ, ४ जुलाई १९०२। वे प्रात:काल मन्दिर में गये और सारे दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द कर दीं। वहाँ उन्होंने तीन घण्टों तक ध्यान किया और फिर माँ जगदम्बा पर एक सुन्दर गीत गाने लगे। मन्दिर से नीचे उतरकर वे कुछ क्षण बरामदे में टहलने लगे। उन्होंने अन्य साधुओं के संग भोजन किया।

भोजन के बाद उन्होंने ब्रह्मचारियों के लिए संस्कृत व्याकरण पर एक कक्षा ली। कक्षा करीब दो घण्टों तक चली जिसके पश्चात् वे कुछ थकान का अनुभव करने लगे। उसके बाद वे स्वामी प्रेमानन्द के साथ दूर तक घूमने के लिए निकले। स्वामीजी ने मठ में एक वेद-विद्यालय

स्थापित करने के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये। घूमने के बाद स्वामीजी ने अन्य संन्यासियों से कुछ समय तक बातचीत की।

संध्या घिर आयी। स्वामीजी अधिकाधिक गम्भीर हो गये तथा आसपास के क्रियाकलापों के प्रति उदासीन हो गये। संध्या-आरती का घण्टा बजा तथा स्वामीजी अपने कमरे में चले गये। वे गंगा की ओर मुख करके ध्यान करने बैठ गये। एक घण्टे के पश्चात् स्वामीजी ने अपने एक शिष्य को बुलाया और सिर पर पंखा झलने के लिए कहा। वे बिस्तर पर सो गये और शिष्य कुछ समय तक उन्हें पंखा झलते रहा और उसके बाद उनके पैर दबाने लगा। शिष्य ने सोचा कि स्वामीजी सो रहे हैं। एक बार स्वामीजी का हाथ थोड़ा-सा हिला। उसके बाद उन्होंने दो लम्बी-लम्बी साँसें लीं। शिष्य को लगा कि कुछ असामान्य घटित हुआ है। उसने एक अन्य साधु को बुलाया, जिन्होंने स्वामीजी की परीक्षा की। उन्होंने देखा कि स्वामीजी की नाड़ी चल नहीं रही थी और साँस भी बन्द हो गयी थी। यही स्वामीजी की महासमाधि थी। उस समय रात्रि के नौ बजकर कुछ मिनट बीते थे।

स्वामीजी ने सारे जीवन अथक परिश्रम किया था। अब "थकाहारा शिशु अपनी माता की गोद में सो रहा था"। उनका जीवन तो समाप्त हो गया था परन्तु उनका कार्य जारी है। उनके देशवासियों के प्रति उनका सन्देश था, "उठो! जागो! और लक्ष्य प्राप्ति तक ठहरो मत!" भारतवासियों ने उनका सन्देश अवश्य ही सुना। उत्कट कर्मशीलता के पश्चात् देश में एक महान् जागृति उत्पन्न हुई। स्त्री-पुरुष गरीबों और पददलितों के लिए नि:स्वार्थ भाव से कार्य करने लगे। अनेक लोगों की यह मान्यता है कि भारत की स्वतन्त्रता के मूल में स्वामी विवेकानन्द द्वारा शुरू किया गया भावान्दोलन ही है।

* * * *